
CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Y'.4353.252
15272
२९८२

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय, वाराणसी।
CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रगतिशील उत्तर प्रदेश

खाद्य समस्या

मुमुक्षु भवन वेद वेदांग विद्यालय
ग्रन्थालय
आगत क्रमांक 1884
दिनांक

—त्रिजय कुम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पब्लिकेशन्स ब्यूरो, सूचना विभाग

Y:4353'252
152J2

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
आगत क्रमांक.......2142
दिनांक.......5/9/87

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खाद्य समस्या

भारतीय जन-जीवन के अद्भुत विरोधाभासों में सर्वाधिक विचित्र बात यह है कि इस देश की तीन-चौथाई जन-संख्या कृषि का व्यवसाय करती है एवं उसके सम्पूर्ण कर्षित क्षेत्र का ८३ प्रतिशत केवल खाद्यान्नों ही की खेती में प्रयुक्त होता है, फिर भी अन्न के सम्बन्ध में यह देश आत्म-निर्भर नहीं है और उसे अपनी आवश्यकता के १० प्रतिशत से कुछ अधिक ही के लिये विदेशों के सामने हाथ पसारना पड़ता है। वस्तुतः देखा जाय तो अन्न का अभाव भारत के लिये नया नहीं है। यह अवश्य ठीक है कि किसी युग में हमारे देश में प्रभूत अन्न प्राचुर्य था, किन्तु देश की प्रति वर्ष बढ़ती हुई जन-संख्या के अनुरूप अन्न की खेती के क्षेत्र में वृद्धि नहीं हुई। आवश्यकता की तुलना में देश का अन्नोत्पादन घटने लगा। विदेशी शासकों ने देश की गिरती हुई खाद्य-स्थिति के प्रति ध्यान देने की कोई विशेष आवश्यकता न समझी। साथ ही जन-साधारण को भी इसकी चिन्ता न हुई कि उसकी खाद्य-व्यवस्था में कहां घुन लग चुका है।

एक प्रश्न सहज ही उठता है कि यदि पहिले ही से हमारा अन्नोत्पादन घटा हुआ था, तो अन्न के अभाव की समस्या युद्धकाल में ही क्यों उदित हुई और इससे पूर्व हमें इस समस्या का सामना क्यों नहीं करना पड़ा? इसका कारण यह है कि १९३५ ई० तक बर्मा भारत का ही एक अंग था और बर्मा का धान देश के अन्नोत्पादन की कमी को सामूहिक रूप से पूरा कर देता था। बर्मा के पृथक हो जाने के बावजूद भी इस समस्या ने गहन रूप नहीं धारण किया, क्योंकि हमारा पड़ोसी हमें प्रतिवर्ष १५–२० लाख टन अन्न भेज दिया करता था। दोनों ही देशों में एक ही सत्ता का राज्य होने तथा शान्ति-काल में विश्वव्यापी अभाव की दुरावस्था न रहने एवं जहाजी स्थिति सुलभ होने के कारण अन्न का यातायात अति साधारण रीति से चलता था और जन-साधारण को, जिसे शिक्षा की कमी तथा दासता की दुरवस्था के कारण आर्थिक विषयों की न तो जानकारी थी और न उसे ऐसे जटिल ज्ञान के अर्जन का अवकाश ही था, अन्न की सुलभता के कारण अन्न क वास्तविक अभाव का भी पता तक न लगने पाया, परन्तु १९४२ ई० में जब जापान समरांगण में कूद पड़ा और पूर्व के समस्त देश, जिनमें बर्मा भी था, उसके अधिकार में आ गये, तो भारत को बर्मा से अन्न मिलना दुष्कर हो गया और यही कारण है कि १९४३ ई० से इस देश में अन्न के अभाव का अनुभव अत्यन्त कटुता से होने लगा। १९४३ ई० का बंगाल का ऐतिहासिक अकाल भी इसी अभाव का शोचनीय परिणाम था।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खाद्य-स्थिति पर युद्ध का परिणाम

मणिपुर तथा आसाम के कुछ भागों को छोड़ कर युद्ध यद्यपि भारत की भूमि पर नहीं लड़ा गया और न यहां की फसलों को ही उससे कोई प्रत्यक्ष हानि पहुंची, फिर भी हमारे अन्नोत्पादन पर युद्ध का प्रभाव अवश्य पड़ा। नई-नई छावनियां, हवाई-अड्डे तथा युद्ध से सम्बन्धित कल-कारखाने बनाने के लिये अन्न पैदा करने वाला कुछ भूमि-क्षेत्र कार्य में लाया गया। दूसरे, फौज की भर्तियों तथा कल-कारखानों, शहरी और फौजी कार्यालयों आदि में काम मिलने के कारण खेतिहर मजदूरों की कुछ कमी पड़ने लगी। इसका भी अन्नोत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ा। उधर विदेशी सेनाओं के आ जाने तथा देशी सेनाओं की संख्यावृद्धि के कारण फौजियों के मांसाहार के लिये पशु-वध की संख्या बढ़ गई। पशुओं का मूल्य तेजी से बढ़ा और बैल-बधिया खरीद सकना सामान्य किसान के लिये कठिन हो गया। युद्धकालीन मुद्रास्फीति ने भी खाद्य-स्थिति को विषम बना दिया। युद्ध का सामान खरीदने के लिये तत्कालीन अंग्रेज सरकार ने नोटों का चलन बहुत बढ़ा दिया और वस्तुओं का मूल्य मुद्रा की बाहुल्यता के कारण बढ़ने लगा। किसान के उत्पादित अन्न का मूल्य भी व्यापक मंहगी के अनुपात में बढ़ गया। इस प्रकार किसान की आय बढ़ी और अपने उत्पादन के एक सामान्य अंश से ही अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाने के कारण वह अपना शेष उत्पादन, जो पहिले की मंदी के कारण उसे स्वयं आधा पेट खाने पर लाचार होकर भी बाजार में लाना पड़ता था, अपने निजी उपयोग के लिये अथवा भावी लाभ की आशा में रोक रखने लगा और इस प्रकार बाजार में अन्न की कमी पड़ने लगी।

ब्रिटिशकालीन व्यवस्था

देश की अन्न-स्थिति जब इस प्रकार जटिल हो गई और बंगाल में व्यापक रूप से भुखमरी पैदा हुई तब विदेशी सत्ता ने खाद्य-समस्या के निराकरण के लिये प्रयत्न आरम्भ किया। ये प्रयत्न अपर्याप्त थे। ग्रामीणों की तो कोई चिंता न थी, वे तो अन्न का उत्पादन ही करते थे, अभाव के असली शिकार तो थे शहर वाले, जो अन्न के लिये या तो ग्रामीणों पर अथवा दूकानदारों पर निर्भर थे, पर अन्न के बढ़ते हुये मूल्य को देखते हुये शहरियों के आर्थिक साधन अत्यन्त संकीर्ण हो रहे थे। अतएव तत्कालीन शासन ने ग्रामीण-क्षेत्रों से अन्न-संग्रह कर अथवा बाहर से अन्न मंगा कर शहरों में नागरिकों के लिये सस्ते अन्न की व्यवस्था की और उसी समय 'कन्ट्रोल' और 'राशनिंग'—ये दो शब्द—इस देश में प्रथम बार सुने गये। पर जैसा कि ऊपर कह चुके हैं, खाद्य-समस्या के निराकरण का यह प्रयत्न अपर्याप्त था, क्योंकि उसके मूल कारण—अन्नोत्पादन की कमी—तथा इस कारण को मिटाने के प्रति समुचित ध्यान नहीं दिया गया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'अधिक अन्न उपजाओ' आन्दोलन का सूत्रपात अवश्य किया गया, पर उसके अन्तर्गत किसानों के प्रयास को न तो समुचित प्रोत्साहन मिला और न वे सुविधायें ही जो वास्तव में अधिक अन्नोत्पादन में सहायक होतीं।

विभाजन का परिणाम

किन्तु स्थिति उस समय और भी जटिल हो गई, जब देश के विभाजन के परिणामस्वरूप उसके कई प्रमुख अन्नोत्पादक क्षेत्र पाकिस्ता नमें चले गये। सिंध और पंजाब भारत के खलिहान माने जाते थे। सिंध तो पूरा का पूरा पाकिस्तान को मिल गया और पंजाब का बटवारा होकर उसका भी अधिकांश पाकिस्तान को ही मिला। विभाजन के फलस्वरूप वर्तमान भारत को विभाजित भारत की जन-संख्या का तो ७७ प्रतिशत भाग मिला, पर इसके विपरीत उसके सम्पूर्ण क्षेत्रफल की केवल ७३ प्रतिशत ही भूमि उसके हिस्से में पड़ी। नहरों द्वारा सिंचित क्षेत्रफल का तो केवल ४८ प्रतिशत ही हमें मिला। गेहूं के सिंचित क्षेत्रफल का भी केवल ५२ प्रतिशत ही हमें प्राप्त हुआ और चावल के क्षेत्रफल का भी एक बड़ा अंश पाकिस्तान ले गया। विभाजन के बाद होने वाली अशान्ति तथा दंगों आदि ने भी देश के कुछ भागों में अन्नोत्पादन की गति को अस्थिर और मन्द कर दिया।

आर्थिक व्यवस्था पर प्रभाव

खाद्य के मोर्चे पर तो विभाजन हमारे लिये बड़ा मंहगा पड़ा। पहिले ही बता चुके हैं कि अविभाजित भारत भी अन्न के सम्बन्ध में आत्मनिर्भर न था और उसे विदेशों से अन्न का आयात करना पड़ता था, परन्तु विभाजन के बाद अन्न के आयात में अत्यधिक वृद्धि हुई और अतिरिक्त द्रव्य उस पर व्यय होने लगा, जिसका स्पष्टीकरण निम्नलिखित तालिका से होता है :—

वर्ष	आयातिक राशि (लाख टनों में)	डालर क्षेत्र से (लाख रु० में)	पौंड क्षेत्र से (लाख रु० में)	रुपया क्षेत्र से (लाख रु० में)
१९४६	२२.४९	२,८२३	३,७८२	१,००६
१९४७	२३.३४	४,५२८	४,५५५	३१६
१९४८	२८.४१	४,०८६	७,६२६	१,२६०
१९४९	३७.०६	४,४७१	९,८६८	१२१
१९५०	२१.०४	९७८	५,१०१	१,९०५

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस प्रकार स्पष्ट है कि अन्न की खरीद में हमें १९४६ ई० में ७६ करोड़ ११ लाख रु०, १९४७ में ९३ करोड़ ९९ लाख रु०, १९४८ में १ अरब २९ करोड़ ७२ लाख रु०, १९४९ में १ अरब ४४ करोड़ ६० लाख रु० तथा १९५० में ७९ करोड़ ८४ लाख रु० खर्च करने पड़े। १९५१ ई० में ३७ लाख टन के आयात का अनुमान है, किन्तु अभी इसके व्यय सम्बन्धी आंकड़े प्रस्तुत नहीं हैं। उपर्युक्त तालिका में १९४६ और ४७ ई० के व्यय-अंक यदि निकाल भी दें, तो अपनी स्वतंत्रता के प्रथम तीन वर्षों में हमें अन्न के आयात पर ३,५४,१६,००,००० रु० का व्यय करना पड़ा। आर्थिक दृष्टि से यह स्थिति अत्यन्त संकटजनक है। इसने हमारी विनिमय-शक्ति को शिथिल कर दिया और अपने डालर तथा स्टर्लिंग अर्जन का अधिकांश हमें इस प्रकार अन्न मंगाने में गवां देना पड़ा। इसी पूंजी का उपयोग यदि हम अन्य उपयोगी वस्तुओं, विशेषकर पूंजीवस्तु (मशीनें तथा कल-पुर्जे बनाने के यंत्रादि) के मंगाने पर करते, तो उससे देश के औद्योगीकरण तथा राष्ट्र के आर्थिक उत्कर्ष में कितनी सहायता मिलती।

प्रधान मंत्री की चेतावनी

इस परिस्थिति ने प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू को देश को यह चेतावनी देने को बाध्य किया कि हमें अपनी अन्न सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्ति स्वयं करनी चाहिये और उत्पादन बढ़ाकर मुद्रा-स्फीति को रोकना चाहिये। प्रधान मंत्री ने कहा कि १९५२ के पश्चात विदेशों से हम तब तक अन्न न मगायेंगे, जब तक किसी दैवी प्रकोप से फसल का व्यापक विनाश होने के कारण अन्न क अभाव न हो गया हो अथवा देश के हित में भूमि को एक फसल के बजाय दूसरं में बदलना आवश्यक न हो गया हो अथवा केन्द्र के पास पर्याप्त खाद्य-भन्डार रखना आवश्यक न हो जाय।

नेहरू जी की चेतावनी व्यर्थ गई हो, ऐसी बात नहीं है। ऊपर जो तालिका दी गई है, उससे स्पष्ट है कि १९४९ ई० में उनकी चेतावनी मिलते ही केन्द्र तथा राज्य के खाद्य-विभागों ने अन्नोत्पादन कार्य को तीव्रगति से प्रारम्भ किया और उसी का परिणाम है कि १९५० ई० में उससे पिछले वर्ष की अपेक्षा अन्न के आयात में कमी हो गई। १९४९ ई० में हमने १ अरब ४४ करोड़ ६० लाख रु० का विपुल व्यय करके ३७ लाख ६ हजार टन अन्न मंगाया था, जब कि १९५० ई० में केवल २१ लाख ४ हजार टन के आयात से ही काम चल गया और उस वर्ष अन्न के आयात पर हमें ८० करोड़ रु० से कम ही व्यय करना पड़ा। १९५१ ई० में स्थिति और भी सुधर गई होती, परन्तु आसाम के भूकम्प, उत्तर प्रदेश, बिहार तथा कुछ अन्य भागों में बाढ़ तथा अनेक राज्यों में अनावृष्टि [illegible] हिसाब लगाया गया है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कि इन प्राकृतिक प्रकोपों के कारण गत वर्ष लगभग ६० लाख टन अन्न नष्ट हो गया। यदि ऐसा न हुआ होता, तो सम्भवतः इसी वर्ष हम अन्न के सम्बन्ध में आत्मनिर्भर हो गये होते। परन्तु प्रकृति के प्रकोप के समक्ष मनुष्य क्या कर सकता है? फिर भी विपरीत परिस्थितियों का दृढ़तापूर्वक सामना करके अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिये सतत् प्रयत्न करते रहना ही तो मानव का धर्म है।

नेहरू जी की चेतावनी ने एक ओर सरकारी खाद्य एवं कृषि विभागों सतर्क और सक्रिय कर दिया, दूसरी ओर कृषकों को भी अन्नोत्पादन-प्रयत्नों के लिये प्रोत्साहित किया। १९४९ ई० में ही निर्णय कर लिया गया था कि १९५२ ई० के अन्त तक अर्थात् १९५२ ई० में आत्मनिर्भरता का लक्ष्य सिद्ध हो जाना चाहिए। इसके लिये भारत सरकार के कृषि मन्त्रालय ने प्रादेशिक सरकारों से परामर्श कर अन्न के उत्पादन की एक संशोधित योजना तैयार की। १९४७–४८ को वुनियादी वर्ष और ४ करोड़ १२ लाख टन का औसत वार्षिक उत्पादन मान कर अनुमान किया गया कि पोषण के योग्य खूराक के वर्तमान स्तर तथा जनसंख्या की क्रमिक वृद्धि को ध्यान में रखते हुये १९५२ ई० में ४५–५० लाख टन के बीच अन्न का अभाव हो सकता है, जिसकी पूर्ति का कार्यक्रम उपर्युक्त योजना में नर्धारित किया गया।

१९५२ ई० तक देश को अन्न के सम्बन्ध में आत्मनिर्भर बना देने के निमित्त कम से कम ४८ लाख टन कीउ त्पादन-वृद्धि का लक्ष्य नर्धारित कर उसकी सिद्धि के लिये यह स्थिर किया गया कि अधिक बल प्रगाढ़ कृषि-कर्म (इन्टेंसिव कल्टीवेशन) पर दिया जाय, अर्थात् किसानों को नये ढंग के औजार, अच्छे बीज, उपयुक्त खाद, सिंचाई की सुविधा, फसल रक्षा के उपाय तथा कृषि के सुधरे हुये ढंग की शिक्षा सुलभ करके अन्न का प्रति एकड़ उत्पादन बढ़ाया जाय और इस प्रकार प्रस्तुत कर्षित क्षेत्रफल से ही पहिले की अपेक्षा अधिक अन्न उपलब्ध किया जाय और दूसरे व्यापक कृषि-कर्म (एक्सटेंसिव कल्टीवेशन) के अन्तर्गत नई भूमि को खेती में लाया जाय।

सिंचाई की सुविधा

यद्यपि विभाजन के कारण सिंचाई के साधनों से युक्त भूमि का एक बड़ा भाग पाकिस्तान चला गया, फिर भी भारत में सिंचाई के साधनों से युक्त ४ करोड़ ७० लाख एकड़ भूमि है, जिसमें से लगभग १ करोड़ ७० लाख एकड़ में नहरों द्वारा सिंचाई होती है और शेष में कुओं, तालाबों तथा नलकूपों द्वारा, परन्तु इससे चौगुनी भूमि ऐसी है, जहां सिंचाई के लिये न तो नहरों की ही और न कुओं आदि की ही व्यवस्था है। अतएव यदि शेष [illegible] करोड़ एकड़ में अधिक अन्नोत्पादन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अभीष्ट है, तो वहां सिंचाई की सुविधाओं का प्रसार करना ही पड़ेगा। भारत सरकार ने इस दिशा में काफी ध्यान दिया। १९४९–५० में ७४,९०० नये कुयें बनाये गये और २२,२०० पुराने कुओं का जीर्णोद्धार हुआ। इससे पिछले दो वर्षों में क्रमशः १५,१०० और ३१,७०० नये कुयें बने थे और ११,९०० तथा ४,३०० पुराने कुओं का जीर्णोद्धार हुआ था। इसी से प्रकट है कि कितने विस्तृत और व्यापक पैमाने पर सिंचाई की सुविधाओं का प्रसार इस अवधि में हुआ। साथ ही २,७४३ नये तालाबों का निर्माण किया गया और डेढ़ हजार पुराने तालाबों की मरम्मत कर उनसे भी सिंचाई का काम लिया गया। कुओं और तालाबों में पानी उठाने के लिये रहट, मोट और पम्पों की भी विस्तृत रूप से व्यवस्था की गई। २० हजार से अधिक रहट, मोट, पम्प आदि विभिन्न राज्यों में किसानों को सस्ते दामों पर बांटे गये। साथ ही ३ हजार नलकूप (ट्यूबवेल) लगाने की भी योजना बनाई गई, जिसके अंतर्गत उत्तर प्रदेश में ४४०, बिहार में ३०० तथा पंजाब में २५६ नलकूपों की स्थापना का ठेका भी दिया जा चुका है। बम्बई में भी ४०० नलकूप लगाये जा रहे हैं।

बीज और खाद

अच्छे बीजों की व्यवस्था के लिये राज्यों को पर्याप्त आर्थिक सहायता दी गई, जिनके कृषि-विभागों ने उत्तम बीजों के उत्पादन के लिये विशेष यत्न किये। उत्तर प्रदेश, बम्बई, बिहार, मध्यप्रदेश आदि राज्यों ने इस सम्बन्ध में प्रशंसनीय प्रगति की है। खादों की व्यवस्था पर भी समुचित ध्यान दिया गया और प्राकृतिक तथा रासायनिक दोनों ही प्रकार की खादों की पर्याप्त व्यवस्था की गई। रासायनिक खादों में 'सल्फेट आफ अमोनिया' इस देश में अधिक लोकप्रिय है। उसकी आवश्यकता लगभग ५ लाख टन प्रति वर्ष की है, परन्तु हमारे देश में आधा लाख टन से अधिक अमोनिया सल्फेट नहीं बनता और उसके आयात में बहुत रुपया विदेशों को जाता है। भारत सरकार ने बिहार के सिन्द्री नामक स्थान पर अमोनिया सल्फेट के निर्माण का एक वृहद् कारखाना स्थापित किया है, जो अब चालू भी हो गया है। वह प्रतिवर्ष लगभग साढ़े ३ लाख टन अमोनिया सल्फेट का निर्माण करेगा। इसी प्रकार सरकार ने 'सुपर फासफेट' के निर्माण की भी व्यवस्था की है और विदेशों से फ़ासफेट खादें मंगाने का विचार छोड़ दिया है। हड्डियों के चूरे तथा पशुओं के रक्त की खाद को भी प्रोत्साहित किया गया। साथ ही हरी खादों—सनई, बरसीम, ढैंचा आदि—पर भी बल दिया गया। सर्वाधिक बल कम्पोस्ट खाद बनाने पर दिया गया, जो सर्वोत्कृष्ट प्राकृतिक खाद है और प्रायः मुफ्त में ही बन सकती है। कम्पोस्ट के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण आगे मिलेगा, यहां इतना ही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कह देना पर्याप्त है कि वह खेतों में सोना बरसा देने वाली खाद है। देश म कम्पोस्ट-निर्माण की जैसी प्रगति हुई है, वह निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट है :—

(कम्पोस्ट निर्माण टनों में)

वर्ष	शहरों में बनी	ग्रामों में बनी	योग
१९४४–४५	१,८२,६१०	२,१०,०००	३,९२,६१०
१९४५–४६	२,८२,६७०	५,२०,०००	८,०२,६७०
१९४६–४७	४,०९,३६०	८,२९,०००	१२,३८,३६०
१९४७–४८	४,८६,०८०	१२,५८,९८६	१७,४५,०६६
१९४८–४९	७,२१,२५७	२७,६५,९४४	३४,८७,२०१
१९४९–५०	१०,१६,०६०	४०,००,०००	५०,१६,०६०

भूमि का पुनरुद्धार

हमारे देश में लगभग ८।। करोड़ एकड़ भूमि ऐसी है जिस पर खेती हो सकती है, पर वह किसी न किसी कारणवश परती पड़ी है। इसमें से लाखों एकड़ भूमि तो कांस तथा अन्य कटीली झाड़ियों से पटी है, लाखों एकड़ पानी की कमी से सूख रही है, लाखों एकड़ पानी भर जाने से अर्थात् जल-निकासी की समुचित व्यवस्था न होने से बेकार है, लाखों एकड़ जमीन मिट्टी के कटाव से मरु-भूमि में बदलती जा रही है तथा लाखों एकड़ लवण (सेलाइन) और क्षार (अल्क-लाइन) युक्त है। ऐसी भूमि के पुनरुद्धार की विस्तृत योजना बनाई गई और छः वर्ष के भीतर ही कांस तथा अन्य कटीली घासों से पटी हुई ४० लाख एकड़ तथा साथ ही २० लाख एकड़ सूखी भूमि को भी हल के नीचे लाने का संकल्प किया गया। कांस तथा कटीली झाड़ियों से पटी भूमि का पुनरुद्धार आसान काम नहीं है। इस घास की जड़ें भूमि के नीचे बहुत गहरे तक चली जाती हैं और जब तक इतनी नीची भूमि को पलट कर घास को समूल नष्ट न कर दिया जाय, तब तक वह जमीन खेती के काम में नहीं आ सकती। इसके लिये भारी ट्रैक्टरों की आवश्यकता है और खाद्य-मन्त्रालय ने इसके लिये एक केन्द्रीय ट्रैक्टर प्रतिष्ठान (सेन्ट्रल ट्रैक्टर आर्गेनाइजेशन) का संघटन किया। अन्तर्राष्ट्रीय बैंक ने इसके लिये एक करोड़ डालर का ऋण भी दिया, जिससे अमेरिका से ३७५ ट्रैक्टर तथा उनके कल-पुर्जे आदि खरीदे जा सके। इनमें से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२४० ट्रैक्टर पहुंच चुके हैं और उनकी १५-१५ ट्रैक्टरों की इकाइयां बना दी गई हैं, जिन्होंने १९५० ई० में २,३९,५०० एकड़ भूमि साफ की तथा १९५१ ई० में २,८०,००० एकड़ भूमि का पुनरुद्धार कर रहे थे। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा मध्य भारत में इन ट्रैक्टरों ने प्रशंसनीय कार्य किया है। उनके द्वारा कृषि योग्य बनाई गई भूमि पर १,३७,००० टन वार्षिक का अतिरिक्त अन्नोत्पादन होने लगा है। इसके अतिरिक्त जल-निकासी आदि की व्यवस्था करके भी हजारों एकड़ भमि का पुनरुद्धार किया गया।

फ़सल रक्षा के उपाय

अन्नोत्पादन बढ़ाने के प्रयासों में फसल की रक्षा के उपायों का महत्व भी विशिष्ट है, क्योंकि विशेषज्ञों के अनुसार लगभग ८०-९० लाख टन अन्न प्रति वर्ष इसलिये नष्ट हो जाता है कि उसकी सुरक्षा की समुचित व्यवस्था नहीं हुई और विभिन्न रोगों, कीड़ों, जानवरों आदि ने उसे खेतों में ही खा डाला। फसलों को रोगों से बचाने की योजना यों तो देश भर में कार्यान्वित की गई, परन्तु उत्तर प्रदेश, मद्रास, बम्बई, बंगाल, पंजाब, उड़ीसा, कुर्ग, दिल्ली तथा आसाम में उन पर विशेष सफलतापूर्वक काम हुआ। सौराष्ट्र, कच्छ, मणिपुर, त्रिपुरा आदि के लिये भी ऐसी ही योजनाएं बनाई जा रही हैं। राजस्थान में टिड्डियों के विनाश की कार्रवाई भी बड़े व्यापक पैमाने पर हुई। गोदामों में अन्न की रक्षा के लिये रासायनिक उपकरणों की समुचित व्यवस्था की गई।

केन्द्रीय प्रयत्नों की सफलताएं

अप्रैल १९४९ से मार्च १९५१ ई० तक दो वर्षों में अन्नोत्पादन बढ़ाने के लिये जिन अल्पकालिक योजनाओं की पूर्ति कर ली गई उनके अन्तर्गत इस अवधि में १,९५,००० नये कुएं बनाये गये तथा पुराने कुओं का जीर्णोद्धार किया गया, १३,६०० तालाब खोदे अथवा सुधारे गये, ४३,००० सिंचाई की साधारण योजनाओं को पूरा किया गया तथा पानी खींचने अथवा उठाने के ४०,००० यन्त्र लगाये गये। ४,१२,००० टन रासायनिक खाद तथा २,८९,००० टन खली खेतों में डाली गई और २५ लाख टन ग्रामीण कम्पोस्ट एवं डेढ़ लाख टन अन्य प्रकार की खादें वितरित की गयीं।

हमारे अन्नोत्पादन में वृद्धि

इन प्रयत्नों के फलस्वरूप हमारी खाद्य-स्थिति का सुधार प्रारम्भ हुआ और १९५० ई० में हमारा अन्न आयात १९४६ ई० के बाद के वर्षों में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सबसे कम हुआ। १९५० ई० में अन्न का यह न्यून आयात ही इस बात का द्योतक है कि देश का अन्नोत्पादन बढ़ा है। वस्तुतः एक ही वर्ष में इस दिशा में काफी सफलता मिली और हमारा अन्नोत्पादन, जो १९४९ ई० में ४३४ लाख टन से अधिक न था, १९५० ई० में ४५५ लाख टन से अधिक हो गया। एक ही वर्ष में २२ लाख टन अतिरिक्त अन्नोत्पादन का रेकर्ड अत्यन्त उत्साह-वर्धक है। हमारे अन्नोत्पादन-प्रयत्नों पर निम्नलिखित तालिका से यथेष्ट प्रकाश पड़ता है :—

वर्ष	उत्पादन हजार टनों में			
	चावल	गेहूं	मोटे अन्न	योग
१९४६	१९,८९२	६,१३४	१५,८७३	४१,८९९
१९४७	२१,६६९	४,९७१	१५,९०४	४२,४४४
१९४८	२१,२४७	५,५७०	१३,९७४	४३,७४१
१९४९	२२,५९७	५,६५०	१५,०६७	४३,३७८
१९५०	२२,७७४	६,२८९	१६,४५७	४५,५२०

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट पता चलता है कि १९४६ ई० में जनता के मन्त्रि-मंडलों के पदारूढ़ होने के पश्चात् हमारे अन्नोत्पावन में निरंतर वृद्धि होती रही है। साथ ही यह तालिका इस बात पर भी पर्याप्त प्रकाश डालती है कि मोटे अन्नों की अपेक्षा गेहूं और चावल का उत्पादन बढ़ाने की ओर अधिक ध्यान दिया गया है और जिस अनुपात में गेहूं और चावल की उत्पादन-वृद्धि हुई है, उस अनुपात में मोटे अन्नों का उत्पादन नहीं बढ़ा है। इसका सर्व-प्रमुख कारण यही है कि युद्धकाल तथा उसके अनन्तर की समृद्धि ने गेहूं और चावल का ही उपभोग अधिक बढ़ाया है। निम्नवर्ग के जो लोग केवल तीज-त्योहारों पर ही गेहूं का आटा खाते थे, अब नित्य ही गेहूं खाने लगे हैं, क्योंकि विभिन्न अन्नों का मूल्य ढांचा कुछ ऐसा बिगड़ा कि गेहूं तथा मोटे अन्नों के मूल्य का अन्तर प्रायः मिट सा चला और जब मोटा अन्न खाने में निम्नवर्ग के उपभोक्ता को कोई आर्थिक बचत न दिखाई दी तो उसने भी महीन अन्नों (गेहूं, महीन चावल आदि) का उपभोग प्रारम्भ कर दिया।

पैदावार बढ़ी तो राशन क्यों घटा?

यहां स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि जब शासन के प्रयत्नों के फलस्वरूप पैदावार इस प्रकार बढ़ी, तो राशन क्यों घटाया गया? खाद्य मन्त्री श्री कन्हैया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लाल मुन्शी ने विगत ७ अप्रैल, १९५१ को संसद में खाद्य-समस्या पर होने वाले विवाद का उत्तर देते हुये इस विरोधाभास पर समुचित प्रकाश डाला था। उन्होंने कहा था कि यह भी सच है कि अन्नोत्पादन बढ़ा है और यह भी सत्य है कि हमें राशन की मात्रा ६ छटांक से घटा कर साढ़े ४ छटांक कर देनी पड़ी, परन्तु इसके लिये सरकार को दोष देने से पूर्व अनेक बातों पर ध्यान देना होगा। एक तो हमारी जन-संख्या की वृद्धि है, जिसके अन्तर्गत प्रतिवर्ष ३० लाख नये मुख अन्न खाने के लिये खुल जाते हैं। इसके अतिरिक्त प्राय: एक करोड़ विस्थापित भी देश में आ चुके हैं और सबसे बड़ी समस्या तो जमींदारों की है, जो जमींदारी-उन्मूलन प्रयत्नों के कारण अपनी जमीनों को किसानों से छीनकर परती डाल रहे हैं। एक ओर हम नई जमीन हल के नीचे ला रहे हैं, दूसरी ओर जमींदार चालू भूमि को भी परती डाल रहे हैं। जमींदारों के कुप्रयत्नों से लगभग एक करोड़ एकड़ भूमि परती पड़ गई है, जो हमको प्रति वर्ष २० लाख टन अन्न दे सकती थी, साथ ही अनावृष्टि, अतिवृष्टि तथा अन्य प्राकृतिक प्रकोपों ने भी ऐसे ही समय में अपना विकराल रूप दिखाया। बिहार तथा देश के अन्यान्य भागों की स्थिति अत्यन्त संकटापन्न हो गई। स्थिति की जटिलता इस प्रकार उलझ गई कि छः छटांक राशन जारी रख कर उतने दिन भी काम नहीं चलाया जा सकता था, जितने दिन में विदेशों में खरीदा जाने वाला अन्न यहां पहुंच सके। ऐसी स्थिति में उपलब्ध अन्न से ही उपयुक्त समय तक काम चलाना श्रेयस्कर था और जो अन्नराशि हमारे पास संचित थी वह विदेशी अन्न आने तक तभी काम दे सकती थी, जब राशन की मात्रा में २५ प्रतिशत कटौती की जाती। यह कटौती सम्पूर्ण देश में एक साथ हुई और सारे नागरिकों ने समान रूप से मिल-बांट कर अपने संचित अन्न का उपभोग किया और यही कदम हमारी गौरवपूर्ण परम्परा के अनुकूल था।

अन्न-संकट क्यों और कब तक ?

खाद्य मंत्री श्री मुन्शी के इस कथन से केवल एक शंका का समाधान होता है और वह यह कि राशन की मात्रा गत वर्ष क्यों घटायी गई थी, परन्तु राशन का घटना-बढ़ना एक गौण विषय है, मुख्य विषय खाद्य-समस्या का सर्वांगीण रूप से समाधान होना है। विगत आठ वर्षों से हम देश में एक अभूतपूर्व खाद्य-संकट देख रहे हैं। करोड़ों नागरिकों को एक प्रतिबन्धित मात्रा में जैसा भी मिले अन्न खाकर रहना पड़ रहा है, करोड़ों रुपये अन्नोत्पादन-वृद्धि के प्रयत्नों में व्यय किये जा चुके हैं, विदेशों से अन्न मंगाने में अरबों रुपये खर्च हो चुके हैं, फिर भी साधारण नागरिक की दृष्टि में अन्न का संकट आज भी वैसा ही है जैसा आठ वर्ष पूर्व था। सरकारी आंकड़ों के अनुसार ही १९४१ ई० में जब अविभाजित भारत की जनसंख्या ३८ करोड़ ९० लाख

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

थी, देश के अन्नोत्पादन का अनुमान ४ करोड़ ८० लाख टन का था। उस समय अन्न का ऐसा अभाव न था जैसा आज है, क्योंकि देश की सम्पूर्ण जन-संख्या, जिसमें विस्थापित भी शामिल हैं, ताजे अंकों के अनुसार घट कर (विभाजन के फलस्वरूप) केवल ३५।। करोड़ रह गई है और उत्पादन के आंकड़े ४ करोड़ ६० लाख टन पर हैं। स्वतः ही लोगों के मन में प्रश्न उठता है कि क्या हमारे अन्नोत्पादन-आंकड़े केवल कागजी हैं अथवा तत्सम्बन्धी सरकारी दावे केवल मात्र आंकड़ों का जादू है और हमारे अन्नोत्पादन-प्रयास वृथा ही गये अथवा हम में से कुछ खाने में कुम्भकर्ण और भीम के भी कान कतरने लगे हैं या हमारा अन्न कहीं अन्यत्र संचित और संग्रहीत हो जाता है और हमारे पास तक पहुंचने नहीं पाता ? ये और ऐसे ही अनेक प्रश्न साधारण नागरिक के मन में उठते हैं और उनका समुचित निराकरण न होने से उसके मन में एक स्वाभाविक खीझ और चिढ़ तथा शासन की क्षमता के प्रति एक प्रकार का अविश्वास और द्रोह की भावना उदित होती है।

अन्न का उपभोग बढ़ा है

जैसा कि प्रारम्भ में बता चुके हैं, युद्धकाल से पूर्व भी भारत अन्न के सम्वन्ध में आत्मसंपन्न न था और तब भी विदेशों से अनाज मंगाया जाता था। विश्व में अन्न की कमी न थी, वह सस्ता था और जहाजी स्थिति भी सुलभ थी। १६४१ ई० तक विदेशी अन्न सहज गति से स्वदेश आता रहा। यह आयात उस समय व्यापारियों द्वारा होता था और विदेशी अन्न के सस्ते होने के कारण देशी अन्न भी उसी भाव विकता था। फलतः उपभोक्ता के मन में यह धारणा बैठ गई कि युद्ध से पूर्व तो देश अन्न से भरा-पुरा था। पर ऐसी बात नहीं है। शहरों और कस्बों के निवासी, जो ग्रामीणों से अधिक सम्पन्न थे, सस्ता अनाज लेकर खाते थे, किन्तु यही मन्दी जो इन उपभोक्ताओं के लिये वरदान थी, अन्न के उत्पादक किसान के लिये अभिशाप बनी हुई थी। भावों की मन्दी के कारण उसकी पैदावार का अधिकांश लगान देने तथा आवश्यकता की अन्य वस्तुओं के खरीदने में निकल जाता था और उसको अपने खाने तथा बीज आदि के लिये मुश्किल से अन्न बचता था। छोटे-छोटे तथा लाभहीन खाते वाले किसानों तथा कृषक-मजदूरों की दशा तो और भी बुरी थी। उनकी उपज कठिनाई से लगान तथा कुछ अत्यन्त ही अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति कर पाती थी। अपने खाने के लिये उनके पास कुछ न बचता था। अधिकांशतः वह जंगली फलों, फलों के बीज, गुठली तथा इसी प्रकार की सटरपटर वस्तुयें खाकर दिन गुजारता था, कभी-कभी एकाध जून मोटा-झोटा अन्न मिल जाता था तो अपना भाग्य सराह उठता था। कभी-कभी बीज के लिये रक्खा हुआ अन्न खाने के लिए भी उसे लाचार होना पड़ता था और तब वह ऋणग्रस्त होता था।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परन्तु युद्धकाल में होने वाली मुद्रास्फीति ने साधारण मूल्य-स्तर में जो वृद्धि की उसका प्रभाव अन्न के मूल्य पर भी पड़ा और अन्न का मूल्य बढ़ते-बढ़ते उस सीमा तक पहुंच गया, जहां लाभहीन और छोटे खाते वाले किसानों की पैदावार यद्यपि उतनी ही बनी रही पर मूल्य-वृद्धि के कारण उनकी मुद्रा-आय उनकी साधारण आवश्यकताओं से अधिक होने लगी। फलतः वे किसान जो फसल होते ही अपना सारा अन्न बेच डालने को विवश होते थे, अब अपनी उपज का केवल कुछ ही अंश बेचने लगे और उतने से ही लगान तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति करने लगे और शेष अन्न अपने उपभोग तथा भावी लाभ के लिये रखने लगे। इस प्रकार बाजार में पहिले की अपेक्षा कम अन्न पहुंचने लगा और अनुत्पादक उपभोक्ताओं को उसकी कमी महसूस होने लगी।

परन्तु इसके लिये किसानों को दोष देना भी अनुचित है। ब्रिटिश शासन-काल की दो शताब्दियों तक अनाहार, अपौष्टिक आहार तथा निरन्न आहार से संत्रस्त रह कर यदि स्वतंत्रता के स्वर्णोदय के साथ उनके पेट में भरपूर अन्न पहुंचने लगा, तो स्वाभाविक ही है। वास्तव में स्वतंत्रता का सच्चा अर्थ भी यही है कि उन्हें पेट भर अन्न मिले और यदि वे अपनी आवश्यकता का अन्न बचा रखने में समर्थ हो गये हैं, तो देश के लिये यह गौरव की ही बात है। पर इसके साथ-साथ अनुत्पादक उपभोक्ताओं शहरियों की समस्या भी अवश्य ही विचारणीय है। शहरी अन्नोत्पादन नहीं करता, पर उसे खाने के लिये अन्न तो चाहिये ही। साथ ही वह अन्य अनेक ऐसे काम करता है, जो ग्रामीण नहीं करते, पर जिनकी उपयोगिता ग्रामीण के जीवन में कम महत्वपूर्ण नहीं है, जैसे रेल, तार, डाक, कल-कारखानों, कम्पनियों आदि का संचालन। ग्रामीणों को अपने अनिवार्य उपयोग की सभी वस्तुयें यथा कपड़ा, लोहा, सीमेंट, औषधि तथा अन्य विविध वस्तुयें शहरी की ही मार्फत उसी के उद्यम अथवा व्यवसाय से मिलती हैं। वास्तव में देश के सामाजिक जीवन की प्रगति में शहरी और ग्रामीण का एक प्रकार का अभिन्न सम्बन्ध है, दोनों ही एक दूसरे पर निर्भर हैं और दोनों का पारस्परिक सहयोग ही समाज के जीवन को गति दे सकता है और इसी कारण ग्रामीण का कर्तव्य है कि वह शहरी के लिये पर्याप्त अन्न की व्यवस्था करे।

एक विचारधारा यह भी है कि कन्ट्रोल हटा दिये जांय। यह मांग एक लम्बे विवाद का विषय है और यहां उस पर विचार करना अभीष्ट नहीं है। परन्तु इसी विचारधारा के अन्तर्गत मांग की जाती है कि किसानों को वांछित दर पर मुक्त रूप से अपना अन्न बेचने दिया जाय। आर्थिक दृष्टि से यह भी एक अव्यावहारिक मांग है। अन्न खुले बाजार में बिकना तभी सम्भव हो सकता है जब अन्य वस्तुओं की भी प्रचुरता हो और वे भी सरलता से उपलब्ध हों, अन्यथा पुनः भाव तेजी से बढ़ेंगे और उनका कहां अन्त होगा, इसे भगवान ही जानें।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उदाहरणार्थ, यदि कन्ट्रोल की व्यवस्था तोड़ दी जाय और अन्न खुले बाजार में बिकने लगे, तो उसका भाव तेजी से बढ़ेगा ही, क्योंकि देश में अन्न की कमी है। शहर वालों को अभी ढाई सेर प्रति रुपया गेहूं मिलता है, यदि वह सेर सवा सेर पर आ गया, तो निश्चयतः उसका खर्च बढ़ेगा, वह अधिक वेतन अथवा अधिक मजदूरी की मांग करेगा और नैतिक रूप से अतिरिक्त मंहगाई-वेतन पाने का हकदार भी होगा। कारखाने का मालिक या वस्तु-व्यवसायी जब अपने मजदूरों और कर्मचारियों को अधिक वेतन देंगे तो अपना यह अतिरिक्त व्यय अपनी वस्तुओं के दाम बढ़ा कर ही तो निकालेंगे, क्योंकि वेतन-वृद्धि से उनके माल की लागत बढ़ जायगी। जब किसान को वही वस्तु पहले से तेज मिलेगी तो वह उसे खरीदने लायक क्रय-शक्ति अर्जित करने के लिये अपने गल्ले का दाम और बढ़ायेगा। तब शहरी वस्तुओं का मूल्य भी और बढ़ेगा। इस प्रकार एक विषम चक्र सा बन जायेगा, जिसका कहीं अन्त न होगा और इस देश की वही दशा होगी जो राष्ट्रीय चीन की हुई थी, जहां के सिक्के की कीमत इतनी गिर गई कि उसका आर्थिक ढांचा ही हिल उठा।

नियोजन और सहयोग की आवश्यकता

कहने का तात्पर्य यह है कि आर्थिक आधार पर ही सुनियोजित कार्यक्रम द्वारा अन्न-संकट का निवारण हो सकता है। अन्न के सम्बन्ध में आत्मसम्पन्न होना हमारे लिये अत्यावश्यक है। यह निश्चित है कि जब तक हम अन्न के सम्बन्ध में आत्मनिर्भर नहीं होते, तब तक देश का अरबों रुपया बेकार जाता रहेगा और हम किसी प्रकार की भी राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा औद्योगिक उन्नति कर सकने में समर्थ न हो पायेंगे। खाद्य मंत्रालय ने १९५२ के मार्च मास तक आत्मसम्पन्नता का जो लक्ष्य बनाया है, वह भी अन्न समस्या का अन्तिम समाधान नहीं हो सकता। वह लक्ष्य हमारी तात्कालिक आवश्यकता की पूर्ति तो कर देगी परन्तु स्थायी रूप से वही हमारा अभीष्ट नहीं होना चाहिये। हमारे देश की जन-संख्या जिस तेजी से बढ़ रही है—प्रति वर्ष ३० लाख प्राणी यहां बढ़ जाते हैं—उसे देखते हुये हमारा उत्पादन निरन्तर बढ़ता ही रहना चाहिये। देश की आहार सम्बन्धी सम्पूर्ण आवश्यकताओं को दृष्टिगत रख कर उत्पादन की योजना बनानी है और उसके लिये हमें तीन बातों पर विचार करने की आवश्यकता होगी, यथा (१) हमारा आहार-अभ्यास, (२) हमारी जन-संख्या और (३) हमारी आय। यही तीन विषय हैं, जिनके आधार पर अन्न के उत्पादन की योजना ठीक-ठीक बन सकती है और इन्हीं के प्रकाश में हम उत्तर प्रदेश की खाद्य-समस्या और उसके निराकरण के लिये किये गये अब तक के प्रयत्नों को सफलता की कसौटी पर कसेंगे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हमारा आहार-अभ्यास

आहार-अभ्यास से तात्पर्य हमारी भोजन सम्बन्धी आदतों से है। हमारे समाज में सामिष तथा निरामिष भोजी दोनों ही वर्ग विद्यमान हैं। अन्य देशों में भी ऐसे वर्ग हैं, किन्तु वहां सामिष भोजी (मांसाहारी) अधिक संख्या में हैं। ऐसे देशों में अन्न की आवश्यकता उतनी नहीं होती जितनी हमारे देश में, जहां मांस खाने वाले व्यक्ति भी अन्न का पर्याप्त उपयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त जैसा कि उपर्युक्त खण्ड में बता चुके हैं, हमारी आय का भी हमारे आहार पर व्यापक प्रभाव रहता है। जो लोग दूध, फल, अन्डा, गोस्त, शाक आदि का अधिक व्यवहार करते हैं, वे निश्चय ही अन्न कम खाते हैं, परन्तु हमारे देश में ऐसे सौभाग्यशालियों की संख्या कितनी है। अधिकांश जनसंख्या के लिये, जिसमें निम्न तथा निम्न-मध्यम वित्त के प्रायः सभी और उच्च मध्यम वर्ग के भी अधिकांश व्यक्ति आजाते हैं, दूध, फल, अन्डा आदि केवल विलास अथवा पथ्य की वस्तुएं रह गई हैं। एक शताब्दी के विदेशी शासन के आर्थिक शोषण ने उन्हें इस प्रकार खोखला कर दिया है कि वे इन अलभ्य पदार्थों का सेवन---उसे उपभोग भी तो नहीं कह सकते---या तो बीमारियों में करते हैं अथवा तीज-त्योहार पर। स्वभावतः शक्ति स्थिर रखने के लिये वे अन्न के ही आश्रित होने को विवश हैं और यही कारण है कि हमारे देश में अन्न का उपयोग अन्य देशों की अपेक्षा अत्यधिक होता है। सदियों के शोषण से उत्पन्न यह आर्थिक दुरव्यवस्था जादू की लकड़ी से दूर नहीं हो सकती और इसके निराकरण में कुछ समय तो लगेगा ही। अत: प्रारम्भिक स्थिति में हमारी अन्नोत्पादन सम्बन्धी योजना इसी आवश्यकता को लक्ष्य में रखकर बन सकती है।

हमारी आहार सम्बन्धी आवश्यकता

हमारी आहार सम्बन्धी वास्तविक आवश्यकता क्या है---इसका निश्चय आधुनिक विद्वान 'कैलरियों' में करते हैं। हमारे शरीर को काम करने के लिये शक्ति चाहिये और शक्ति उस ताप का दूसरा नाम है, जो विभिन्न खाद्य-पदार्थों के सेवन से हमारे शरीर में उत्पन्न होता है। 'कैलरी' इस ताप अथवा शक्ति की एक मात्रा की माप है। भोजन का प्रत्येक पदार्थ, जो हम खाते हैं, हमारे शरीर को ताप अथवा शक्ति प्रदान करता है। परन्तु इनमें से प्रत्येक पदार्थ में समान ताप अथवा शक्ति नहीं होती। प्रत्येक पदार्थ अपना पृथक 'कैलरी मान' रखता है और उसके अनुसार हमें शक्ति प्रदान करता है। पुरानी लीग आफ़ नेशन्स द्वारा नियुक्त एक विशेषज्ञ-समिति ने विस्तृत जांच के बाद स्थिर किया है कि समशीतोष्ण जलवायु में रहने वाले और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

साधारण कार्य करने वाले प्रत्येक वयस्क पुरुष अथवा स्त्री के लिये प्रति दिन कम से कम २,४०० कैलरी-शक्ति का भोजन आवश्यक है और इसी को आधार मान कर शारीरिक परिश्रम करने वालों के लिये अतिरिक्त भोजन की निम्नलिखित कैलरी-शक्ति के पदार्थों के सेवन की सिफारिश की गई है:—

हल्का कार्य—७५ कैलरी प्रति कार्य-घण्टा, सामान्य श्रम—७५ से १५० कैलरी प्रति कार्य-घण्टा, अधिक श्रम—१५० से ३०० कैलरी प्रति कार्य-घण्टा और अति श्रम—३००कैलरी प्रति कार्य-घंटा।

भारतीय जलवायु तथा आहार-अभ्यास को दृष्टिगत रख कर विशेषज्ञों ने हमारे लिये प्रति दिन निम्नलिखित कैलरी-शक्ति के भोजन की आवश्यकता बताई है :—

१४ वर्ष की वय से बड़ा पुरुष	..	२,६०० कैलरी
१४ वर्ष की वय से बड़ी स्त्री	..	२,१०० ,,
१२–१३ वर्ष का बालक अथवा बालिका	..	२,१०० ,,
१०–११ वर्ष का बालक अथवा बालिका	..	१,८०० ,,
८–९ वर्ष का बालक अथवा बालिका	..	१,६०० ,,
६–७ वर्ष का बालक अथवा बालिका	..	१,३०० ,,
३ से ५ वर्ष का बालक अथवा बालिका	..	१,००० ,,

हम क्या खायें ?

विविध पदार्थों के कैलरी–तत्व का हिसाब लगा कर भारतीयों के लिये सन्तुलित आहार की मात्रा की व्यवस्था तीन संस्थाओं की रिपोर्ट में दी गई है। इनमें से एक तो भारतीय उद्योगपतियों की प्रसिद्ध बम्बई योजना (टाटा–बिड़ला योजना के नाम से विख्यात) की रिपोर्ट है, दूसरी राष्ट्रीय नियोजन समिति (नेशनल प्लानिंग कमेटी) की रिपोर्ट है और तीसरी इंडियन रिसर्च फण्ड एसोसियेशन की पोषकतत्व-परामर्शदात्री समिति की रिपोर्ट है। इन तीनों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हीं रिपोर्टों की व्यवस्थाओं में अधिक अन्तर नहीं हैं। उनके अनुसार औसत भारतीय के लिये निम्नलिखित सन्तुलित आहार उपादेय माना गया है:-

पदार्थ	आहार की मात्रा छंटाकों में		
	बम्बई योजना	नियोजन समिति	पोषकतत्व समिति
अन्न	८	७॥	७
दाल	१॥	१॥	१॥
पत्तेदार सब्जी	..	२	२
जड़वाला शाक	३	३	१॥
अन्य शाक	..	..	१॥
चीनी या गुड़	१	१	१
फल	१	१	१
दूध	४	४	५
चर्बी, घी, तेल	..	१	१
मांस, मछली, अंडा	१।	रुचि के अनुसार	१॥ + १ अन्डा
योग ..	१६॥	२१	२३

उपर्युक्त नक्शे से स्पष्ट है कि शरीर को पुष्ट रखने के लिये हमें प्रति दिन ७ और ८ छटांक के बीच अन्न चाहिये। इसी आवश्यकता के प्रकाश में हम उत्तर प्रदेश की अन्न-समस्या पर विचार करेंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि खाद्य-प्रयत्नों पर विचार करते समय निरन्तर पदार्थों की उपलब्धि के सम्बन्ध में भी विचार करना आवश्यक है। उस पर भी हम विचार करेंगे, परन्तु अन्न हमारे खाद्यान्न की मुख्य वस्तु है, अतएव सर्वप्रथम हम उसी की आवश्यकता, उत्पादन, उपलब्धि आदि के सम्बन्ध में सोचेंगे।

उत्तर प्रदेश की अन्न-स्थिति

उत्तर प्रदेश को दीर्घकाल से अन्न के सम्बन्ध में आत्मसम्पन्न प्रदेश समझा जाता रहा है। वस्तुस्थिति यह है कि यह राज्य अन्न-बाहुल्य के दिन तो इस शताब्दी के कुछ प्रारम्भिक वर्षों को छोड़ कर इधर कभी नहीं देख सका है,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परन्तु यह भी सत्य है कि यहां पहले कभी अन्न के घोर अभाव का भी अस्तित्व नहीं रहा है। जिस वर्ष फसल कुछ अच्छी हो जाती थी, उस वर्ष आवश्यकता से कुछ अधिक अन्न हो जाता था और उस वर्ष इस प्रान्त से कुछ अन्न बाहर भी चला जाता था, पर जिस वर्ष फसल खराब होती थी, उस साल बाहर से कुछ अन्न मंगाना पड़ता था। पर ले दे कर राज्य अभावग्रस्त प्रदेशों की श्रेणी में न था। १९३९ ई० से पूर्व जो विश्वव्यापी आर्थिक संकट कई वर्ष तक स्थिर रहा, उन वर्षों में भी सामान्यतः चावल को छोड़कर हमारे प्रदेश को अन्न के लिये पराश्रित न होना पड़ता था। कभी-कभी पंजाब से थोड़ा गेहूं आ जाता था, परन्तु चावल करीब-करीब पौने दो लाख टन उसे प्रतिवर्ष बर्मा, मध्यप्रदेश, सिंध आदि से मंगाना पड़ता था। गेहूं का अभाव उसे केवल एक वर्ष (१९३९-४०) में खला और वह अभाव भी लभाव २३ हजार टन का था। पर यहां यह भी दृष्टिगत रखने की बात है कि गेहूं खाने वालों की संख्या उस समय सीमित थी। मोटे अन्नों के सम्बन्ध में उत्तर प्रदेश आत्म–सम्पन्न ही न था, बल्कि उनका उत्पादन बहुलता के साथ होता था। दालें तथा ज्वार, बाजरा, मक्का आदि अत्यन्त प्रचुर मात्रा में होता था और जनसंख्या का एक बड़ा भाग गेहूं और चावल के स्थान पर उन्हीं का उपयोग करता था। इन अन्नों का प्राचुर्य इतना अधिक था कि अपनी सारी आवश्यकतायें पूरी कर राज्य लगभग एक लाख टन दालें तथा मोटा अन्न बाहर भेजता था। इसी प्रकार तेल और तिलहन भी प्रचुर परिमाण में होता था और डढ़ लाख टन तेल तथा ४० लाख टन तिलहन भी बाहर जाया करता था। साढ़े ३ लाख टन गुड़ तथा साढ़े ४ लाख टन हजार टन शक्कर के रूप में गन्ना भी प्रचुर मात्रा में होता था और आलू भी राज्य की खाद्य-बाहुल्यता में पर्याप्त योग देता था।

जन-संख्या की वृद्धि और अन्न का अभाव

उत्तर प्रदेश में अन्न के अभाव के कारण भी मुख्यतः वही हैं, जो सम्पूर्ण देश की-अन्न स्थिति को संकटापन्न किये हुये हैं। परन्तु सर्वप्रमुख कारण तो यह है कि हमारा अन्नोत्पादन हमारी जनसंख्या की वृद्धि की गति के साथ साथ न चल सका। तृतीय दशक के प्रारम्भ तक यह राज्य अन्न-बाहुल्य प्रान्त था, परन्तु चतुर्थ दशक के प्रारम्भ से वही सम्पन्नता और अभाव की विभाजन रेखा पर भटकने लगा और पंचम दशक के प्रारम्भ ने उसे अन्न के सम्बन्ध में निश्चित रूप से अभावग्रस्त पाया। किन्तु पंचम दशक के उत्तरार्द्ध में लोकप्रिय शासन पदारूढ़ हो चुका था और उसके प्रयत्नों के फलस्वरूप अन्नोत्पादन बढ़ने लगा, फिर भी वह बढ़ती हुई जनसंख्या की गति का साथ तो नहीं दे सका। निम्नलिखित तालिका से विभिन्न दशकों में संयुक्त–

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रान्त (अब उत्तर प्रदेश) की जनसंख्या तथा अन्नोत्पादन की गति-विधि पर प्रकाश पड़ता है:—

वर्ष	जनसंख्या (लाखों में)	अन्नोत्पादन (लाख टनों में)
१६२१—२२	४६५.०	११२.०
१६३१—३२	४६६.१	६४.६
१६४१—४२	५६३.४	८१.४
१६४७—४८	६००.०	६७.७

इस तालिका से स्पष्ट है कि विगत महायुद्ध के ही समय से हमारे राज्य में अन्नसंकट नहीं है, बल्कि दशकों से हमारा राज्य अन्न के अभाव का शनैः शनैः शिकार बनता आ रहा है। तृतीय दशक के प्रारम्भ में यह राज्य अन्न-बाहुल्य था। साढ़े ४ करोड़ से कुछ ही अधिक जनसंख्या के लिये १ करोड़ १२ लाख टन का उत्पादन आवश्यकता से भी कुछ अधिक ही था, परन्तु चतुर्थ दशक के प्रारम्भ (१६३१-३२) में आते-आते यह बहुल्यता अभाव में बदलने लगी और पंचम दशक (१६४१-४२) में आते आते तो यह राज्य निश्चित रूप से अभावग्रस्त हो गया। ध्यान रहे कि एक ओर तो जनसंख्या बढ़ती रही और अन्न का उत्पादन घटता रहा, दूसरी ओर पंचम दशक के प्रारम्भ काल से ही अन्न का उपभोग बढ़ चला।

स्वाभाविक है कि अन्न की दुरावस्था का लाभ उठा कर अधिक लाभ के प्रलोभन ने व्यापारियों को अन्न का संग्रह करने तथा इस प्रकार पूर्ति के साधन रोक कर अन्न का भाव बढ़ाने के लिये प्रेरित किया। उधर नागरिकों में भी अन्न के बढ़ते हुये मूल्य तथा उसकी दुष्प्राप्यता ने सन्देह की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति उत्पन्न कर दी और वे संकट-काल के लिये कुछ रक्षित अन्न-राशि की व्यवस्था करने लगे। इस प्रकार बाजार का सन्तुलन बिगड़ गया और सर्वत्र अन्न का अभाव दृष्टिगोचर होने लगा। इस स्थिति में बाहर से अन्न मंगाने के सिवा हमारे पास अन्य कोई चारा न था।

मुख्य-मंत्री पण्डित गोविन्द वल्लभ पन्त ने पद ग्रहण करके १२ अप्रैल, १६४६ ई० को राज्य के नाम जो सम्बोधन लखनऊ रेडियो से प्रसारित किया, उसमें तथा बाद में विधान सभा में भी उन्होंने घोषित किया कि जब तक इस प्रान्त में कांग्रेस शासन स्थिर है कोई भी व्यक्ति भूख से न मरने पायेगा। इसमें यद्यपि कोई संदेह नहीं कि पंडित पन्त और उनके मंत्रिमंडल ने अपने इस प्रण का निर्वाह पूरी तरह किया और अन्न-स्थिति के अधिकाधिक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संकटापन्न होने के बावजूद इस राज्य में भुखमरी से एक भी मृत्यु नहीं हुई। परन्तु इसमें भी संदेह नहीं कि उनकी यह घोषणा वस्तु-स्थिति को देखते हुये अत्यन्त साहसिक थी। जिस समय उन्होंने पद ग्रहण किया था, उस समय राज्य में अन्न की स्थिति संतोषजनक नहीं थी। जैसा कि कृषि विभाग के निम्न-लिखित नकशे से ज्ञात होता है, जिसमें विभिन्न जिन्सों की औसत पैदावार का वार्षिक विवरण है।

प्रति एकड़ उत्पादन (मनों में)

वर्ष	गेहूं	चावल	चना	जौ	मक्का	बाजरा
१९३८–३९	८.५९	७.११	७.२२	९.५५	८.२३	४.३५
१९३९–४०	१०.६५	८.४१	८.२४	११.४१	११.०७	५.६१
१९४०–४१	९.६८	६.६१	८.३३	१२.१२	१०.७३	५.२१
१९४१–४२	९.०१	६.३७	७.१४	१०.१७	८.६२	४.७५
१९४२–४३	९.६९	६.९९	८.३५	१०.८०	१०.६२	५.८९
१९४३–४४	८.९५	७.०५	६.३०	८.५३	१०.१७	५.७०
१९४४–४५	९.१२	५.७०	७.३८	१०.५२	१०.७४	५.२४
१९४५–४६	७.७६	५.९७	६.६४	९.०८	१०.३६	५.२५
१९४६–४७	७.९३	६.४३	७.२१	१०.२१	८.६७	४.९०
१९४७–४८	९.२०	६.५२	७.९७	१०.४३	८.९९	५.२९

जमींदारी उन्मूलन का महत्व

अन्न के उत्पादन और शासन के प्रति कृषक की आस्था और विश्वास में घनिष्ट संबंध है। सन् १९४६ में मंत्रिमंडल ने पद ग्रहण करते ही किसान को समुचित आश्वासन दिये। हक-आराजी क़ानून (टेनेंसी ऐक्ट) की धाराओं में आवश्यक संशोधन करके बेदखलियां रोक दी गईं और जमींदारी का यथाशीघ्र उन्मूलन करने की घोषणा की गई। कृषक को अपनी भूमि पर स्थायी अधिकार मिलने का आश्वासन मिला। जमींदारी-उन्मूलन का राजनीतिक तथा आर्थिक महत्व तो पर्याप्त रूप से प्रकाशित और प्रचारित हो चुका है और उसके सम्बन्ध में यहां अधिक कहना अभीष्ट भी नहीं है, किन्तु यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि यदि मंत्रिमंडल जमींदारी उन्मूलन के सम्बन्ध में पद-ग्रहण करते ही अपने संकल्प की निश्चित घोषणा न कर देता और कालान्तर में जमींदारी उन्मूलन तथा भूमि-सुधार अधिनियम पारित न कर देता तो अन्नोत्पादन की अभिवृद्धि के उसके सारे प्रयत्न विफल रहते। इसी प्रकार उसके पंचायत राज अधिनियम का योग भी इस दिशा में कम नही है। इस विधान के अन्तर्गत स्वशासन के विस्तृत अधिकार प्राप्त कर ग्रामीणों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ने स्वाधीनता के उदयकाल में लोकतंत्रवाद का जो सुस्वाद मधुपान किया उसने उसमें एक नया उल्लास और नई जिन्दादिली भर दी और इससे भी अन्नोत्पादन प्रयास को स्फूर्ति मिली।

उत्तर प्रदेश की अन्न आवश्यकता

अब हम देखेंगे कि हमारे राज्य की वास्तविक अन्न-आवश्यकता कितनी है और उसकी पूर्ति के निमित्त हमारे किसानों ने क्या योग दिया तथा अधिक अन्नोत्पादन को प्रोत्साहित करने के लिये हमारे शासन ने किसानों को क्या-क्या सुविधायें दीं तथा स्वयं क्या प्रयत्न किये।

जैसा कि पहले कह चुके हैं, अन्न सम्बन्धी अपनी आवश्यकता को समझने के लिये हमें अपनी जन-संख्या पर भी विचार करना होगा। १९५१ ई० की जन-गणना के अनुसार इस राज्य की जन-संख्या ६३३ लाख (६करोड़ ३३ लाख) कूती गई है। पर इसी अंक के आधार पर यदि हम अपनी अन्न सम्बन्धी आवश्यकता का अनुमान लगायें तो वह निश्चयतः गलत होगा, क्योंकि हमारी जन-संख्या जिस गति से बढ़ रही है, उसके अनुसार इस राज्य में प्रतिवर्ष ६ लाख नये प्राणी अन्न खाने के लिये बढ़ जाते हैं। राज्य के अन्नोत्पादन आयुक्त (फूड-प्रोडक्शन कमिश्नर) ने १९५२ ई० के मार्च तक राज्य को अन्न के सम्बन्ध में आत्मनिर्भर बना देने के लिये जो लक्ष्य निर्धारित किया है, उसमें एक वर्ष की जनसंख्या वृद्धि को भी जोड़ लिया गया है अर्थात् उन्होंने ६३९ लाख जनसंख्या को पर्याप्त भोजन दे सकने योग्य उत्पादन को अपना लक्ष्य माना है।

अन्न की वास्तविक आवश्यकता जानने के लिये हमें जनसंख्या को आहार इकाइयों (फूड यूनिट) में बदलना होगा। एक वयस्क के सन्तुलित आहार में वर्णित अन्न मात्रा को एक और अवयस्क की आहार मात्रा को आधी इकाई मान लेने पर अन्न की समुचित आवश्यकता का परिमाण जानना सरल हो जायगा। हमारी ६३९ लाख की सम्भावित जनसंख्या में ५४४ लाख वयस्क हैं और ९५ लाख अवयस्क। इस प्रकार जनसंख्या को यदि आहार इकाइयों में बदलें, तो उनकी संख्या ५४४ + ४७॥ अर्थात् ५९१॥ लाख आयेगी। परन्तु यह अंक भी हमें धोखा दे सकता है, क्योंकि देखा गया है कि ग्रामीण का आहार शहरी के आहार की अपेक्षा अधिक होता है और उसकी अन्न सम्बन्धी आवश्यकता शहरी से अधिक होती है। इसलिये सही आवश्यकता जानने के लिये हमें शहरी तथा ग्रामीण इकाइयों को अलग-अलग निकालना पड़ेगा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

६३६ लाख की जन-संख्या में से ५२६ लाख ग्रामीण हैं और ११० लाख शहरी। ग्रामीण जन–संख्या में ४५० लाख वयस्क हैं और ७६ लाख अवयस्क। इस प्रकार ग्रामीण आहार इकाइयों की संख्या ४५०+३६।। अर्थात ४८६।। लाख हुई। इसी प्रकार शहरी जन-संख्या में ६४ लाख वयस्क हैं और १६ लाख अवयस्क और उनकी आहार इकाइयां ६४+८ अर्थात् १०२ लाख हुई। ग्रामीण का आहार कम से कम ८ छटांक प्रति इकाई प्रतिदिन माना गया है। इस प्रकार ८ छटांक के हिसाब से ४८६।। लाख ग्रामीण इकाइयों के लिये हमें प्रतिवर्ष ७३ लाख ३३ हजार टन अन्न चाहिये। १०२ लाख शहरी इकाइयों की अन्न सम्बन्धी आवश्यकता दो दृष्टिकोणों से देखी जाती है—एक तो वर्तमान राशन दर के आधार पर और दूसरे विशेषज्ञों द्वारा निर्धारित सन्तुलित आहार के आधार पर। प्रथम आधार के अनुसार प्रत्येक इकाई को ६ छटांक अन्न चाहिये और दूसरे आधार के अनुसार ७ छटांक। ६ छटांक की दर से शहरी इकाइयों के लिये हमें ११ लाख ४० हजार टन अन्न प्रतिवर्ष और ७ छटांक की दर से १३ लाख ४० हजार टन अन्न की आवश्यकता है। इस प्रकार ग्रामीण तथा शहरी आवश्यकताओं को जोड़कर हमें प्रतिवर्ष ८४ लाख ७३ हजार अथवा ८६ लाख ७३ हजार टन अन्न चाहिये।

हमारा वर्तमान उत्पादन

पिछले पृष्ठों में हम अपने अन्नोत्पादन के सम्बन्ध में कुछ आंकड़े दे चुके हैं। युद्धकाल के प्रारम्भ में तथा उसके बाद भी यद्यपि अन्नोत्पादन ८०–८५ लाख टन के बीच स्थिर रहा, परन्तु लोकप्रिय शासन के स्थापित होने तथा उसके प्रोत्साहन पर उसमें वृद्धि होने लगी और हमारा स्वाभाविक अन्नोत्पादन ९५।। लाख टन के आसपास आ गया। परन्तु यह सारा अन्न उपभोक्ताओं को ही तो नहीं मिल जाता, इसमें से १२।। प्रतिशत बीज के लिये तथा लगभग ५ प्रतिशत पशुओं आदि के लिये निकल जाता है। इस प्रकार अपने सम्पूर्ण अन्नोत्पादन का १७।। प्रतिशत अर्थात लगभग १६ लाख ७० हजार टन अन्न हमें अलग सुरक्षित कर देना पड़ता है और हमारे अपने उपयोग के लिये केवल ७८।।। लाख टन अन्न ही बचता है, जबकि हमारी अन्न सम्बन्धी आवश्यकता ८४।।। लाख अथवा ८६।।। लाख टन के बीच है। इस प्रकार राज्य में प्रति व्यक्ति राशन-व्यवस्था द्वारा अनुमोदित आहार मात्रा की दर से छः लाख और सन्तुलित आहार मात्रा की दर से ८ लाख टन वार्षिक का अभाव रहता है। औसतन यह अभाव ७ लाख टन वार्षिक का हुआ।

सरकारी प्रयास कितना सफल हुआ ?

उत्तर प्रदेश में वर्तमान मंत्रिमंडल ने १९४६ ई० में पद ग्रहण करने पर अन्नोत्पादन बढ़ाने का प्रयास प्रारम्भ कर दिया था। १९४९ ई० के पश्चात्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उसका अन्नोत्पादन प्रयास अधिक तीव्र हो गया और नेहरू जी की अपील के पश्चात् तो उसने और भी तीव्र गति ग्रहण कर ली। अन्नोत्पादन आयुक्त (फूड-प्रोडक्शन कमिश्नर) के अनुसार अन्न के सम्बन्ध में आत्मसम्पन्नता प्राप्त करने की दिशा में राज्य तेजी से अग्रसर हुआ और इस अधिकारी को विश्वास है कि मार्च १९५२ ई० तक, जो आत्म-निर्भरता उपलब्ध करने का नेहरू-निर्धारित अवधि-लक्ष्य है, उत्तर प्रदेश अन्न के सम्बन्ध में आत्म-सम्पन्न ही नहीं हो जायगा, बल्कि देश के अन्य राज्यों की भी समुचित सहायता कर सकेगा। शासन का दावा है कि यदि प्रकृति ने विरोध न किया, तो इसी वर्ष के अन्त तक यह राज्य अपनी आवश्यकता-पूर्ति के अतिरिक्त शेष भारत के अन्न अभाव के ५० प्रतिशत की पूर्ति भी कर सकने में समर्थ हो जायगा।

शासन को अपने प्रयत्नों में सफलता तो अवश्य मिली है और राज्य का अन्नोत्पादन भी बढ़ा है, जिसका सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि अपनी शहरी राशन-व्यवस्था को यथाविधि जारी रखने के लिये हमें जहां २ लाख ३० हजार टन अन्न प्रतिवर्ष आयात करना पड़ता था, वहां १९५० ई० में केवल ४७ हजार टन अन्न ही बाहर से मंगाया गया और काम भली-भांति चल गया। पर कृषि-उत्कर्ष और उसके द्वारा अन्नोत्पादन-वृद्धि के प्रयास में सरकार ने कहां तक प्रगति की है और किसान उसके साथ कहां तक सहयोग कर सका है तथा दोनों के सहयोग में कहां पर त्रुटि है और उसको कैसे दूर किया जाय एवं सरकारी प्रयास किसानों के उत्साहवर्द्धन में कितनी सहायता पहुंचा पाया है और कितनी पहुंचा सकता है, इन सब विषयों पर हम विस्तार से विचार करेंगे।

उत्तर प्रदेश का कृषि-क्षेत्र

अन्नोत्पादन सम्बन्धी कोई भी योजना बनाने तथा कृषि-उत्कर्ष विषयक किसी भी कार्यक्रम पर विचार करने से पूर्व हमें अपने राज्य के क्षेत्रफल तथा उसके कृषि-क्षेत्र के सम्बन्ध में समुचित ज्ञान प्राप्त कर लेना आवश्यक है। उत्तर प्रदेश का सम्पूर्ण क्षेत्रफल १,१२,५२३ वर्ग मील अथवा लगभग साढ़े छः करोड़ एकड़ है, जिसमें से पौने ५ करोड़ एकड़ अर्थात् सम्पूर्ण क्षेत्रफल का लगभग ७३ प्रतिशत खेती के काम आता है। वस्तुतः हमारे राज्य में भूमि का बटवारा जिस प्रकार हुआ है और विभिन्न उपयोगों में आने वाली भूमि के क्षेत्रफल का, राज्य का सम्पूर्ण क्षेत्रफल से जो अनुपात है, वह आगे पृष्ठ पर दिये हुए नक्शे से स्पष्ट हो जाता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भूमि और उसका उपयोग	क्षेत्रफल (एकड़ों में)	सम्पूर्ण क्षेत्रफल से उसका अनुपात
कृषि के अन्तर्गत——	४,७५,८६,८८०	७३
(१—अन्न—क्षेत्र—४,२३,५२,८७२)		(६५)
(२—निरन्न—क्षेत्र—५२,३४,००८)		(८)
परती भूमि——	३२,४४,९९६	५
(१—नई परती—२२,७६,४५७)		(३॥)
(२—पुरानी परती—९,६८,५३९)		(१॥)
जंगल——	७८,१९,१८४	१२
(१—पहाड़ी जंगल ४६,८४,५८३)		(७)
(२—मैदानी जंगल—३१,३४,६०१)		(५)
बस्तियां आदि——	६५,५३,००८	१०

उपर्युक्त नक्शे से प्रकट है कि हमारे सम्पूर्ण क्षेत्रफल का ७३ प्रतिशत भाग खेती में प्रयुक्त होता है और हमारी सम्पूर्ण भूमि का ६५ प्रतिशत अन्न की खेती में है, शेष ८ प्रतिशत गन्ना, कपास, जूट आदि की कृषि के काम आता है। हमारा प्रयोजन मुख्यतः अन्न की कृषि से ही है। अन्न की कृषि में हमारी भूमि का ४,२३,५२,८७२ एकड़ क्षेत्र प्रयुक्त होता है, जो इस आधार पर हमारी पूर्ण जन-संख्या को देखते हुये लगभग पौन एकड़ क्षेत्र प्रति व्यक्ति पड़ती है। सामान्यतः प्रति व्यक्ति इतना अन्न-क्षेत्र आवश्यकता से अधिक है और उसे तो हमारी सम्पूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति कर उससे कई गुना अधिक बचा भी लेना चाहिये, क्योंकि प्रति व्यक्ति अन्न की वार्षिक आवश्यकता अधिकाधिक ४ साढ़े चार मन है। इसका अर्थ है कि हमारी भूमि का उत्पादन कम है।

अन्नोत्पादन बढ़ाने की विधि

अन्नोत्पादन बढ़ाने की दो ही प्रमुख विधियां है, यथा व्यापक कृषि कर्म (एक्सटेंसिव कल्टीवेशन), जिसके अन्तर्गत नई भूमि तोड़ कर हल के नीचे लाई जाती है और उससे अतिरिक्त अन्न उपलब्ध किया जाता है और दूसरे प्रगाढ़ कृषि कर्म (इंटेंसिव कल्टीवेशन), जिसके अन्तर्गत पुरानी भूमि को जो पहिले ही से हल के नीचे है सवांर-सुधार कर इस योग्य बनाया जाता है कि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वह प्रति एकड़ अधिक उत्पादन कर सके। इसमें सर्वाधिक महत्व द्वितीय, अर्थात् प्रगाढ़ कृषि कर्म का है, क्योंकि जब तक भूमि का प्रति एकड़ उत्पादन नहीं बढ़ाया जाता, तब तक चाहे जितनी नई भूमि हल के नीचे आती रहे समस्या का निराकरण नहीं हो सकता। जैसा कि ऊपर बता चुके हैं, हमारे प्रान्त की ६५ प्रतिशत भूमि खाद्यान्नों के उत्पादन में प्रयुक्त है, प्रति व्यक्ति पीछे लगभग पौन एकड़ भूमि में हमारे लिये अन्न बोया जाता है, पर तो भी हमें पूरा नहीं पड़ता। उत्पादन (प्रति एकड़) की दिशा में हमारी अवस्था कैसी हीन है, निम्नलिखित नक्शे से उस पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है:—

देश	प्रति एकड़ उत्पादन मनों में		
	गेहूं	चावल	मोटा अन्न
कनाडा	१३	..	३२
मिश्र	१८	१८	२७
जापान	२१।	४३	२१
चीन	१२	३०॥	..
इटली	१०॥	२७	१५
भारत	८।	१५	..
उत्तर प्रदेश	६	६॥।	८।

इस नक्शे से स्पष्ट है कि विदेशी राष्ट्रों की तुलना में हमारे यहां अन्न की प्रति एकड़ पैदावार अत्यल्प है। जापान और चीन हमारे प्रदेश की अपेक्षा पांच-सात गुना अधिक चावल पैदा करते हैं। उत्तर प्रदेश के ये आंकड़े १९३८–३९ से १९४७–४८ ई० तक के दस वर्ष के आंकड़ों का औसत निकाल कर लिखे गये हैं। कांग्रेस शासन ने अन्नोत्पादन वृद्धि के जो प्रयत्न किये हैं, उनका प्रतिफल उत्साहवर्द्धक अवश्य है। चावल को ही लीजिये, उसका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्पादन अब प्रति एकड़ लगभग ६ मन का औसत प्राप्त कर चुका है, यों रेकर्ड तो ६५ मन धान प्रति एकड़ का इसी प्रदेश में उपलब्ध हो चुका है। गेहूं का उत्पादन भी अन्य देशों में हमारे प्रदेश की अपेक्षा दोगुना होता है। मोटे अन्न का उत्पादन भी अन्य देश हमारे से प्रति एकड़ चौगुना करते हैं। हमारे प्रदेश में अन्नोत्पादन प्रतियोगिता के अन्तर्गत प्रति एकड़ ४२।। मन मक्का, २० मन ज्वार और १५ मन बाजरा पैदा किया जा चुका है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रगाढ़ कृषि-कर्म (इटेंसिव कल्टीवेशन) के अन्तर्गत उपलब्ध भूमि से ही आवश्यकता से अधिक अन्न पैदा किया जा सकता है और नई भूमि तोड़ने की आवश्यकता नहीं पड़ती। परन्तु हमें तो मार्च, १९५२ ई० तक अन्न के सम्बन्ध में आत्म-सम्पन्न हो जाना है, अतः केवल प्रगाढ़ कृषि-कर्म के परिणामों की प्रतीक्षा में हम नहीं बैठे रह सकते थे। अतएव मंत्रि-मंडल ने अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिये इन दोनों ही विधियों को अपनाया और अन्नोत्पादन के मोर्चे पर अभाव रूपी शत्रु के विरुद्ध आगे पीछे दोनों ही ओर से आघात किया।

व्यापक और प्रगाढ़ कृषि-विधियों का निरूपण

जैसा कि पहिले बता चुके हैं, व्यापक कृषि-कर्म (एक्सटेंसिव कल्टीवेशन) का प्रयोजन कृषि का प्रसार है, अर्थात् नई भूमि तोड़ना और ऐसी जमीन को, जो पहिले खेती के काम न आती हो, हल के नीचे लाना। हमारे राज्य में हजारों और लाखों एकड़ भूमि इसी प्रकार है, जो कृषि काम में प्रयुक्त हो सकती है, पर अनेक कारणों से लोग वहां खेती न कर सकते थे। एक प्रकार की ऐसी भूमि कांस से ग्रस्त भूमि है। कांस एक प्रकार की घास है, जिसकी जड़ भूमि के अंदर हाथ-सवा हाथ नीचे तक चली जाती है और सामान्य हल उसको नष्ट नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार की परती भूमि है, जो लाखों एकड़ में फैली हुई है। बहुतेरी परती तो ऐसी है, जिस पर आसानी से खेती हो सकती है, पर किसानों ने उधर रुख नहीं किया। बहुतेरी ऐसी हैं जिसे सामान्य वैज्ञानिक प्रक्रिया से खेती के योग्य बनाया जा सकता है। कुछ ऐसी भी हैं जो बरसात का पानी भर जाने से खेती के काम नहीं आ सकती, पर यदि पानी निकाल दिया जाय तो वह अन्न उगल सकती है। बहुतेरी ज़मीन विभिन्न प्रकार की घासों और झाड़ियों से आच्छादित हैं और साफ की जाने से अन्न पैदा कर सकती हैं। भूमि-क्षरण (स्वायल इरोजन) से भी बहुतेरी भूमि नष्ट हो रही हैं। यह भूमि के कटने-फटने का नाम है। समुचित मात्रा में मृत्ति-कृमि (स्वायल बैक्टीरिया) तथा जल न मिलने के कारण भूमि कट-फट जाती है और खेती के योग्य नहीं रहती। उसका समुचित संस्कार कर यदि उसपर खेती की जाय, तो पर्याप्त अतिरिक्त अन्न मिल सकता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस प्रकार व्यापक कृषि कर्म (एक्सटेंसिव कल्टीवेशन) के अन्तर्गत (१) नई भूमि-तोड़ना, (२) भूमि का पुनरुद्धार तथा (३) भूमि-क्षरण रोकना आते हैं।

प्रगाढ़ कृषि-कर्म के अन्तर्गत वे सभी काम आ जाते हैं, जिनका आशय भूमि की पैदावार अथवा उर्वरता बढ़ाना है। भूमि की उर्वरता बढ़ाने के लिये अनेक वस्तुओं की आवश्यकता होती है, यथा (१) उम्दा बीज, (२) पर्याप्त जल अर्थात् सिंचाई की सुविधा का विस्तार, (३) उत्तम और उपयोगी खाद, (४) फसल की सुरक्षा की उपयुक्त व्यवस्था और (५) उक्त चारों विषयों पर सही व्यवहार कर सकने के लिये समुचित कृषि-ज्ञान का सन्तोषजनक प्रबन्ध।

अब हम देखें कि इस दिशा में अर्थात् व्यापक (एक्सटेंसिव) और प्रगाढ़ (इन्टेंसिव) कृषि-कर्म के प्रसार के हेतु कांग्रेस शासन ने क्या-क्या किया है और अपने प्रयास में उसे कहां तक सफलता मिली है।

भूमि का पुनरुद्धार

व्यापक कृषि के प्रसार के हेतु भूमि-पुनरुद्धार अर्थात् नई जमीन तोड़ने की योजना अत्यन्त महत्वपूर्ण है और पन्त मंत्रिमडल ने इस दिशा में श्लाघनीय प्रयास किये हैं। मंत्रिमंडल द्वारा किये गये यदि अन्य सभी कार्यों को एक क्षण के लिये भुला दिया जाय, तो भी उसकी भूमि-पुनरुद्धार योजना के केवल दो ही अंग—गंगा-खादर और तराई भावर—ऐसे महत्वपूर्ण हैं कि उनकी पूर्ति इस मंत्रिमंडल के लिये एक अमर और अक्षय कीर्ति-स्तम्भ के रूप में चिर-विद्यमान रहेगी। ये दोनों ही योजनायें न केवल इस देश में बल्कि सम्पूर्ण एशिया में भूमि के पुनरुद्धार की सबसे बड़ी योजनायें है। लेखक को स्वयं उनका निरीक्षण करने का अवसर मिल चुका है और उनकी महत्ता तथा विशालता का अनुमान केवल उक्त स्थलों को देखने से ही हो सकता है। जिन भयानक जंगलों को काट कर इन स्थलों को आबाद किया गया है, उनकी भयंकरता का कुछ अनुमान वे अवश्य कर सकते हैं जिन्होंने टार्जन सम्बन्धी उपन्यास पढ़े अथवा उसके फिल्म देखे हैं। इन दोनों ही योजनाओं की पूर्ति के उपरान्त प्रायः डेढ़ लाख एकड़ भूमि, जो कुछ काल पूर्व भयावह बनों से आच्छादित थी और जहां हिंसक पशुओं की भरमार के कारण मनुष्य का रहना तो दूर उसका वहां प्रवेश तक वर्जित था, लहलहाते खेतों, महकते बागों तथा सुरम्य बस्तियों से गमक उठेगी। इन दोनों ही क्षेत्रों में अब तक प्रायः ४० हजार एकड़ भूमि का पुनरुद्धार हो चुका है, खेतों में फसलों से लहलहाते पौदे खड़े हैं, बागों में सुन्दर फलदार वृक्ष लग चुके हैं और आधुनिक उपकरणों, विद्युत-जल, पक्की सड़कों, पक्के मकानों से सुसज्जित ग्राम्य राज्य के शेष भागों को राजनीतिक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वतंत्रता के साथ-साथ आर्थिक स्वतंत्रता का भी पावन सन्देश देने को चमक र ही हैं। ये दोनों ही योजनायें वास्तव में अति महत्वपूर्ण हैं और इसीलिये उनका विशेष विवरण आगे के प्रकरणों में पृथक रूप से देंगे।

मंत्रिमंडल का एक अन्य महाप्रयास कांस–उन्मूलन के सम्बन्ध में है। कांस एक विचित्र और लम्बी सी घास है। बुंदेलखंड में कहीं भी यात्रा करते समय इसके दर्शन किये जा सकते हैं। झांसी से कानपुर जाने वाली रेलवे लाइन पर यात्रा करते समय भी इस घास के दर्शन हो सकते हैं। यह एक लम्बी सी घास है, परन्तु उससे भी अधिक घातक इसकी जड़ें हैं, जो भूमि के भीतर हाथ–डेढ़ हाथ नीचे चली जाती है और जमीन के नीचे ही नीचे उनका एक प्रकार का अद्भुत जाल सा बनता रहता है, जो नये पौदों को अंकुरित करता है और यह घास अत्यन्त घनीभूत हो कर भूमि को आच्छादित कर लेती हैं। बुन्देलखंड का अधिकांश क्षेत्र इस घास के कारण खेती से रहित था। बताया जाता है कि हाल ही में बुन्देलखण्ड में देशी रियासतों के विलीनीकरण तथा सीमांत स्थिति कुछ गांवों की उलटफेर से पूर्ण बुन्देलखंड का कुल क्षेत्रफल एकड़ों में ६९ लाख था और उसका केवल ४८ प्रतिशत खेती में प्रयुक्त होता था, शेष कांस-ग्रस्त होने के कारण कृषि-रहित था। हिसाब लगाया गया है कि बुन्देलखंड में प्रत्येक दस एकड़ कृषि के पीछे सात एकड़ भूमि कांसग्रस्त होने के कारण बेकार पड़ी है। कांस उक्त प्रदेश में सैकड़ों वर्षों से उगती आ रही है और अंग्रेजी शासनकाल में लगभग ५० वर्ष तक उसके उन्मूलन के अनेकानेक प्रयत्न हुये, किन्तु असफल हुये। पर वर्तमान जन–प्रिय शासन ने इस समस्या को अन्ततः हल करके ही छोड़ा।

जैसा कि बता चुके हैं कांस की जड़ें भूमि में काफी अन्दर तक जाती हैं। साधारण किसान उनका उन्मलन नहीं कर सकता, क्योंकि उसका हल अथवा फरुआ न तो इतना नींचे पहुंच सकता है और न कांस की जड़ें नष्ट हो सकती है। वह ऊपर की कांस काट भी ले, तो भी कोई लाभ नहीं, क्योंकि भीतर की जड़ें नये पौदों को जन्म दे देती हैं। इसके लिये बड़े-बड़े ट्रैक्टरों की जरूरत है, जो हाथ-डेढ़ हाथ नीचे की मिट्टी को पलट सकें और इस प्रकार जड़ों को समूल नष्ट कर सकें। भारत सरकार के केन्द्रीय ट्रैक्टर प्रतिष्ठान (सेन्ट्रल ट्रैक्टर आर्गेनाइजेशन) की मदद से तथा कालान्तर में अपने निजी ट्रैक्टरों के द्वारा सरकार ने कांस के विनाश की योजना बनाई। सर्वप्रथम महरौनी तहसील इसके लिये चुनी गई। इसका एक कारण यह भी था कि वहां एक बड़ा सा इकठ्ठा क्षेत्र इस काम के लिये मिल गया था। अब तक बुन्देलखंड में २७,००० एकड़ क्षेत्र कांस से मुक्त किया जा चुका है और वहां खेती होने लगी है।

भूमि-पुनरुद्धार की एक योजना राजकीय यांत्रिक कृषि फार्मों के रूप में है, जिसके अन्तर्गत उसने १६,७५८ एकड़ भूमि तोड़ी है। इस योजना के अनुसार

Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१२ कृषि फार्म विभिन्न जिलों में स्थापित किये गये हैं, जिनमें से सबसे छोटे फार्म का क्षेत्रफल ८५६ एकड़ तथा सब से बड़े का ५,२३५ एकड़ है। शेष एक हजार से दो हजार एकड़ों के बीच में है। इन फार्मों में यन्त्रों द्वारा कृषि होती है तथा उनके साथ चरागाह संलग्न हैं। आस-पास के किसान वहां जाकर यान्त्रिक कृषि का ढंग देख सकते हैं। इन फार्मों में पशुपालन की भी व्यवस्था है और समीप के ग्रामीण वहां पशुपालन की वैज्ञानिक रीति देख और सीख सकते हैं।

पुनरुद्धार की एक अन्य योजना काशीपुर (नैनीताल) में परिचालित हो रही है, जहां ३८,६६८ एकड़ भूमि को साफ करके हल के नीचे लाने का उद्योग हो रहा है। इसमें से साढ़े सात हजार एकड़ से अधिक जमीन अब तक टूट चुकी है और वहां खेती होने लगी है। यह भूमि विस्थापित परिवार, राजनीतिक पीड़ितों तथा कृषि स्नातकों को दीगई है। इसके अतिरिक्त वहां के पुराने किसानों को उनकी भूमि सुधार कर वापस कर दी गई है, ताकि वे उससे अधिकाधिक लाभ उठा सकें। सुधार का व्यय उनसे सुविधा-जनक शर्तों पर वसूल कर लिया जायगा।

गंगा-खादर पुनरुद्धार योजना

हरद्वार से लेकर गढ़मुक्तेश्वर तक खादर की एक पट्टी गंगा नदी के खोले और मुख्य धारा के बीच चली आती है। मेरठ जिले में इसकी चौड़ाई प्रायः ६॥ मील है और खादर के इसी क्षेत्र के विकास का कार्य मंत्रिमंडल ने शुरू किया, जिसके द्वारा वह लाखों मन अन्न की पैदावार बढ़ाने में समर्थ हुई है। यह क्षेत्र असीम ऐतिहासिक महत्व का है। इसका उल्लेख द्वापर की आख्यायिकाओं में हैं। कौरवों की विख्यात राजधानी हस्तिनापुर इसी क्षेत्र में स्थित है, जहां उसके भग्नावशेष आज भी विद्यमान हैं और वहां होने वाली खुदाइयों में ऐतिहासिक महत्व की अनेक वस्तुयें मिली हैं, जिनसे इस समय हमारा प्रयोजन नहीं है। हमें तो उसके अन्नोत्पादन उपयोग से काम है और उसी दृष्टि से हम उस पर विचार करेंगे।

यह क्षेत्र सदियों से एक बीहड़ जंगल बना हुआ था। महाभारत काल के पश्चात् इस क्षेत्र में मानव आवास का कोई निश्चित अथवा प्रामाणित उल्लेख नहीं मिलता। इस घोर जंगल में चीते, बाघ, गुलबघे, चीतल, सुअर, भेड़िये और लकड़बग्घे निरद्वन्द्व घूमते थे। जमीन ऊबड़-खावड़ थी और बीच-बीच में निचली जमीन में पानी भर जाने से उथली झीलें और ताल बन गये थे, जिनमें बरसाती पानी भर जाया करता था और सम्पूर्ण क्षेत्र को मलेरिया का दान दिया करता था। बरसाती नाले भी इस इलाके में बहुतायत से थे और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनियन्त्रित ढंग से वह कर वे भी मलेरिया के प्रसार में योग दिया करते थे।

इस क्षेत्र में कृषि का विकास करने के सम्बन्ध में हाल ही में सोचा गया हो ऐसी बात नहीं है। १८६५-७० ई० के बन्दोबस्त के समय सेटिलमेन्ट कमिश्नर ने इस क्षेत्र के ४२५२० एकड़ क्षेत्र को अत्यन्त उर्वर बताया था, परन्तु विदेशी शासन-काल में उस पर कोई विशेष ध्यान न दिया गया। १८८० ई० में रेवेन्यू विभाग के एक संकल्प में इस क्षेत्र को खेती के लिये काफी अच्छा समझ कर उसके विकास की सिफारिश की गई, पर विशेष इस दिशा में सरकार की ओर से प्रयत्न नहीं किये गये।

किन्तु इस भूमि की उर्वरता की बाबत किसानों को जब ज्ञात हुआ, तो उन्होंने यत्र-तत्र जहां स्थान पाया और जिसे उन्होंने हिंसक पशुओं से निरापद पाया, वहां खेती करनी शुरू कर दी और इस प्रकार एक गैर-सरकारी तरीके पर उन्होंने लगभग सात हजार एकड़ जमीन हल के नीचे ला दी, पर वह एक असंगठित विच्छृंखलित प्रयास था।

जनता का शासन स्थापित होने पर मंत्रिमंडल ने इस बीहड़ क्षेत्र के विकास का काम उत्साहपूर्वक शुरू कर दिया। ऐसे भयानक जंगली क्षेत्र को, जो दलदलों से भी परिपूर्ण था, साफ करना साधारण कार्य न था। भूमि को जंगलों और कटीली घासों से साफ करना, भूमि को समतल करना, झीलों और तलैयों का पानी निकालना और उनकी सतह उठा कर उन्हें खेती के काम में लाना, बरसाती नालों को नियंत्रित करके उनको समुचित उपयोग में लाना, सरल कार्य न था। इसके अतिरिक्त वह सर्वथा नहीं तो अधिकांशतः वीरान इलाका था और वहां बस्तियां बसाना आसान काम न था। बसने वालों के लिये मकान बनाने, वहां के सबसे बड़े संकट मलेरिया को मिटाने, दलदलों को सुखाने, बसने वालों को हिंसक पशुओं के आक्रमण से बचाने की समस्यायें अत्यन्त दुरूह थीं। बसने वालों के लिये स्वच्छ जल का प्रबन्ध करना भी एक कठिन काम था।

इस विराट योजना की पूर्ति के लिये जिस बड़े पैमाने के संगठन और धन व्यय की आवश्यकता थी उनकी व्यवस्था राष्ट्रीय सरकार ही कर सकती थी। विदेशी सरकार देशी आदमियों के हित के लिये इतने बड़े काम का सिरदर्द क्यों लेती। इसके अतिरिक्त संगठन तथा धन की व्यवस्था के अलावा जन-समर्थन की भी आवश्यकता थी, जो विदेशी शासन किसी भी प्रकार अर्जित नहीं कर सकता था। अतएव उपजाऊ होते हुए भी यह क्षेत्र परित्यक्त पड़ा रहा। परन्तु १९४६ ई० में पदारूढ़ होते ही जन-शासन ने इस महती

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

योजना को सम्पन्न करने का निश्चय किया। कठिनाइयों और घनाभाव की कोई चिन्ता न करके उसने इस बीहड़ क्षेत्र को सुन्दर वस्तियों में वदलने का संकल्प कर लिया और खादर के ५५,६०३ एकड़ क्षेत्र के विकास का कार्य स्वाधीनता की उदय-बेला में १७ दिसम्बर, १६४७ ई० को प्रारम्भ कर दिया गया। जैसा कि बता चुके हैं, उपर्युक्त क्षेत्र में लगभग ७,००० एकड़ में यत्र-तत्र खेती पहिले ही से होती थी। वहां के किसानों को उनकी जमीन पर उन सारे अधिकारों की सुरक्षा की गारन्टी दी गई, जो प्रचलित कानूनों द्वारा विहित हैं। शेष क्षेत्र का विभाजन इस प्रकार हुआः—

		एकड़
१—राजकीय कृषि-फार्म	..	१,०००
२—राजकीय दुग्धशाला	..	१,०००
३—वसने वालों का कृषि-क्षेत्र	..	२०,०००
४—बन-विकास तथा ईंधन के बागात	...	७,०००
५—गोचर-भूमि (चारागाह आदि)	..	१५,६०३
६—बस्तियों, सड़कों, जलमार्गों आदि के लिये छोड़ी गई भूमि	..	४,०००

यह विकास-कार्य इस द्रुत गति से परिचालित हुआ कि केवल सात ही मास बाद अर्थात् जुलाई, १९४८ ई० तक वहां ६,३३६ एकड़ भूमि में खरीफ़ की फ़सलें बोई जा सकीं और डेढ़ वर्ष बाद अर्थात् जून, १९४९ ई० तक १८, ४९६ एकड़ भूमि हल के नीचे आ गई और उसकी खरीफ़ की पैदावार ४,१६,४१५ मन हुई और वह भी उस हालत में जब कि अतिवृष्टि तथा गंगा की अपरिमित बाढ़ के कारण बहुतेरा इलाका जलमग्न हो गया था। जून, १९४९ ई० तक इस क्षेत्र में विघटित सैनिकों, पाकिस्तान से आये हुये विस्थापितों तथा राजनीतिक पीड़ितों के १,३८६ परिवार बस चुके थे। उनमें से प्रत्येक परिवार को १० एकड़ भूमि दी गई। सामान्यतः माना गया है कि एक साधारण परिवार के लिये १० एकड़ भूमि पर्याप्त होती है। बसने वालों की कौटुम्बिक सुविधा तथा सामुदायिक एकत्रीकरण की दृष्टि से उनकी सुसंगठित बस्तियां बसाई गईं और इसके लिए सम्पूर्ण कृषि-क्षेत्र को १२५ थोकों में विभाजित कर दिया गया, जिनमें से प्रत्येक थोक १६० एकड़ का था और प्रत्येक थोक को ४०-४० एकड़ के उपथोकों में विभाजित कर दिया गया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस क्षेत्र में अब तक प्रायः डेढ़ दर्जन ग्राम बसाए जा चुके हैं और वहां लगभग साढ़े १२ सौ मकान बनाए जा चुके हैं। ये मकान आधुनिक ढंग से साफ-सुथरे और हवादार हैं और प्रत्येक पर १,२०० से १,४०० रु० तक की लागत पड़ी है। बसने वालों को स्वच्छ जल पहुंचाने के उद्देश्य से सरकार ने वहां चार नल-कूप (ट्यूब वेल) लगाये हैं और इन नलकूपों से उपलब्ध जल नलों द्वारा इन ग्रामों में पहुंचाया गया। विभिन्न ग्रामों तथा कृषि-थोकों को एक दूसरे से सम्बद्ध करने के लिये ५० मील की कच्ची किन्तु भली-भांति कुटी हुई पुख्ता सड़कें बनाई गईं और एक आध-मील लम्बी तारकोल की उत्कृष्ट सड़क द्वारा हस्तिनापुर को मोवाना कस्बे से मिला कर इस क्षेत्र को राष्ट्रीय राजमार्गों से प्रत्यक्षतः सम्बद्ध कर दिया गया।

सिंचाई के लिये जल की व्यवस्था करने के हेतु २२ नये नल-कूप स्थापित किये गये और उत्तम जल-प्रणालियां बनाकर उनका जल खेतों में पहुंचाने की व्यवस्था की गई। मलेरिया की रोक-थाम के लिये ९८ वर्गमील क्षेत्र में व्यवस्था की गई और ३,३७,५७,५४८ वर्गफीट क्षेत्र में डी० डी० टी० छिड़की गई। खादर के निवासियों में सहकारिता का अद्भुत प्रसार हुआ है और उन्होंने १६ सहकारी कृषि-संस्थायें, एक सहकारी उपभोक्ता भन्डार तथा एक महिला औद्योगिक सहकारिता संघ भी बनाया है, जिनमें विभिन्न कारीगरियों का विकास होता है। सहकारी-समितियां बहुधन्धे के उद्देश्यों को लेकर संगठित की गई हैं और कालान्तर में वे औपनिवेशिकों की समस्त आवश्यकताओं के लिये उत्पादन, संग्रह, पूर्ति, वितरण आदि का संगठन सम्पन्न कर लेंगी। ऐसी व्यवस्था की जा रही है कि कृषि-फार्मों से लेकर ग्राम-स्कूलों और औषधालयों के परिचालन, जल तथा विद्युत प्रतिष्ठानों के संचालन तथा बीज के वितरण, फसल के विक्रय तथा आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति आदि का कार्य इन सहकारिता-संस्थाओं द्वारा ही हो सके। इन संस्थाओं की मार्फत अब तक ८ लाख से अधिक रुपया इस क्षेत्र के औपनिवेशकों में ऋण रूप में वितरित किया जा चुका है।

तराई-भावर पुनरुद्धार योजना

तराई-भावर के पुनरुद्धार की योजना गंगा-खादर से कम महत्वपूर्ण नहीं है। यथार्थ में वह गंगा-खादर की अपेक्षा अधिक कठिन और संकट-युक्त थी। यह क्षेत्र हिमालय की तराई में नैनीताल की पहाड़ियों के नीचे स्थित है और वहां कुछ ही दिन पूर्व तक घना जंगल था, जहां पुनरुद्धार का कार्य हंसी-ठट्ठा न था। सिर से भी ऊंची लम्बी घास तथा घने वृक्षों से आच्छादित इस विराट वन में, जहां कुमायूं का प्रसिद्ध नरभक्षी निर्द्वन्द्व घूमता था और जहां दिन-रात के किसी भी पहर में वन-पशुओं का हृदयभेदी गर्जन तथा लघु वनचारियों का रोदनपूर्ण विलाप अब भी सुना जा सकता है, बस्तियां बसाना सहज काम न था।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पालतू हाथी की पीठ के अतिरिक्त जहां यातायात का अन्य कोई साधन न था, जहां के कण-कण में मलेरिया के कीटाणु बिलबिलाया करते थे, जहां आदमी के नाम वनमानुस भी देखने को न मिलता था, ऐसे तराई प्रदेश में बस्तियां बसाना तो दूर प्रारम्भिक नाप-जोख और पैमाइश का काम भी बड़ा कठिन था और जिन विपरीत परिस्थितियों में कृषि, निर्माण तथा अन्य विभागों के कर्मचारियों ने वहां काम किया है, वे निःस्संदेह कई उपन्यासों का कथानक बन सकती हैं।

यह भयंकर जंगल लखनऊ-काठगोदाम सड़क पर स्थित किच्छा-हल्द्वानी के बीच की सड़क के वाम पार्श्व में बड़ी दूर तक फैला हुआ है। वहां के १,१०,००० एकड़ क्षेत्र का पुनरुद्धार कर वहां खेती कराने का संकल्प किया गया है, जिसमें से ५ वर्ष के भीतर ही ५०,०००.एकड़ को हल के नीचे ले आना है। ४ जनवरी, १९४८ ई० को वहां जंगल की कटाई-सफाई का काम शुरू किया गया। तराई के वृहदाकार वृक्षों को काटना मानव शक्ति के लिये तो सर्वथा दुष्कर था। अतएव यह कार्य बुलडोजरों से लिया गया। ये भीमकाय यन्त्र इतने शक्तिशाली होते हैं कि बड़े से बड़े और घने से घने वृक्ष को मिनटों में काट कर गिरा देते हैं। वृक्षों के अलावा लम्बी घासों को नष्ट करना भी एक कठिन काम था। इसके लिये ट्रैक्टरों से सहायता ली गई, जिन्होंने हाथ-हाथ भर नीची मिट्टी पलट कर घास को गिरा दिया और वह सड़ कर एक उम्दा खाद के रूप में परिणत हो गई।

इस क्षेत्र में अब तक २६,००० एकड़ से अधिक भूमि हल के नीचे लाई जा चुकी है, जिसमें से ६,००० एकड़ का एक वृहद् सरकारी फार्म है, जिसका विस्तार कालान्तर में १६,३०० एकड़ में किया जायगा। यह भारत का ही नहीं सम्पूर्ण एशिया का सबसे बड़ा सरकारी फार्म होगा। शेष २० हजार एकड़ क्षेत्र को औपनिवेशकों के ग्रामों में वितरित कर दिया गया है। प्रत्येक ४,००० एकड़ क्षेत्र में एक ग्राम बस रहा है, जिसमें से १,००० एकड़ में तो घर, बस्तियां, सड़कें, बाग, चरागाह आदि होंगे और शेष ३,००० एकड़ को ७॥–७॥ सौ एकड़ के चार-चार वृहद् फार्मों में बांट दिया जायगा और प्रत्येक फार्म में १०-१० एकड़ के ७५ पारिवारिक प्लाट रहेंगे। चारागाहों पर सम्पूर्ण ग्राम-समाज का समान अधिकार होगा। इस योजना के पूर्ण होने पर अर्थात् सम्पूर्ण १,१०,००० एकड़ भूमि टूट जाने पर वहां प्रायः साढ़े ५ ५॥–६ हजार परिवारों को बसाया जा सकेगा।

अब तक जिस २६,००० एकड़ क्षेत्र का पुनरुद्धार हुआ है, वह लखनऊ-काठगोदाम रोड के पार्श्व में है। इस सड़क पर स्थित किच्छा और नगला कस्बों को आधार तथा किच्छा से दस मील दूर स्थित रुद्रपुर कस्बे को शीर्ष मान कर जो त्रिभुजाकार खंड निकलता है, उसका समुचित विकास

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हो चुका है। वहां सुन्दर ग्राम बस गये हैं जहां बिजली और पानी की भव्य व्यवस्था है। रुद्रपुर को पक्की तारकोल की सड़कों द्वारा किच्छा और नगला से मिला दिया गया है, जहां वे लखनऊ-काठगोदाम सड़क से मिलकर शेष विश्व के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आ जाती हैं। इस क्षेत्र में ग्रामों को सड़कों के किनारे अथवा उनके पार्श्व में बसाया जा रहा है। प्रत्येक परिवार को अपने निर्धारित कृषि-क्षेत्र के अतिरिक्त डढ़ एकड़ भूमि मकान बनाने तथा बाग लगाने के लिये दी जाती है और साथ ही मकान बनाने की सामग्री भी नियंत्रित मूल्य पर सुलभ है। कृषि औजारों तथा पशुओं आदि की खरीद के लिये १,००० रु० ऊपर से दिया जाता है। दिसम्बर १९५० ई० तक वहां ९९६ परिवारों को भूमिखंड वितरित किये जा चुके थे, जिनमें ५०५ विस्थापित, ३१५ राजनैतिक पीड़ित, १५० कृषि-स्नातक तथा ५५ निवृत्त सैनिक परिवार थे। स्वच्छ जल की व्यवस्था के लिये नल-कूप लगाये गये तथा भू-निर्झरों (आर्टिजन वेल) से पानी लिया गया। मलेरिया का सर्वथा विनाश कर दिया गया और पहिले जहां मच्छरों का साम्राज्य था, इन दिनों विकसित क्षेत्र में एक भी मच्छर नहीं है फिर भी एक उत्कृष्ट मलेरिया अस्पताल रुद्रपुर में स्थापित किया गया है, जिसका भवन अति भव्य है। जंगली जानवरों से मानव-प्राण तथा फसल की रक्षा की भी समुचित व्यवस्था की गई है। उपनिवेश तथा जंगल के बीच एक मील चौड़ी एक टुकड़ी छोड़ दी गई है और दोनों की सीमा पर लम्बी खाई खोद कर कटीले तार लगा दिये गये हैं, ताकि हिंसक पशु इस ओर न आ सकें और बस्तियां सुरक्षित रहें। साथ ही वहां के निवासियों को शस्त्रों के लाइसेंस भी उदारतापूर्वक दिये गये हैं। अन्न-तस्कर पशुओं द्वारा खेती को जो हानि पहुंचती थी उसको रोकने के समुचित प्रयत्न किये गये हैं और उनकी सफलता इसी से प्रमाणित है कि प्रथम वर्ष पशुओं द्वारा ३० प्रतिशत फसल नष्ट हुई, दूसरे वर्ष यह अनुपात घट कर १० प्रतिशत रह गया और अब एक प्रतिशत से अधिक फसल पशुओं द्वारा नष्ट नहीं होती।

यहां की भूमि अत्यन्त उपजाऊ है, जिसे सींचने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इस तराई में धरातल से केवल कुछ सौ फीट नीचे जल का अथाह समुद्र भरा हुआ है, जो ऊपर की भूमि को आर्द्र रखता है। यहां तक कि तीन-ही चार हाथ खोदने पर यहां जल निकल आता है। भूमि की उर्वरता का प्रमाण यहां का सरकारी कृषि-फार्म है, जहां धान की औसत पैदावार १५ मन प्रति एकड़ है, यद्यपि एक बड़े भू-भाग में धान ४२ मन प्रति एकड़ तक पैदा होता है। गन्ने के उत्पादन का औसत भी ८०० से १,००० मन प्रति एकड़ तक का है और यहां का गन्ना दस फीट से नीचा नहीं होता। यहां खेती में अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता और शीघ्र ही यह स्थल एक सुरम्य और उन्नत स्थल में परिवर्तित हो जायगा। यहां के निवासियों में अनेक प्रकार के कुटीरोद्योग प्रचलित किये जा रहे हैं, जिसके लिये प्रर्याप्त विद्युत-शक्ति का प्रबन्ध कर दिया गया है। हालही में मुख्य मंत्री पंडित पंत ने वहां एक विशाल बिजली-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

घर का उद्घाटन किया है। यह स्थान ऐतिहासिक महत्व से भी रिक्त नहीं और महाभारत-काल में उसका नाम आया है। किच्छा कस्बा राजा विराट के साले तथा उनके सेनापति कीचक द्वारा बसाया गया था। स्वयं विराट की राजधानी रुद्रपुर के आस-पास कहीं थी और इसी विराट की कन्या उत्तरा अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु से विवाही थी। इस प्रकार गंगा खादर और तराई क्षेत्र में एक प्रकार का अभिन्न सम्बन्ध है। अकबर के समय यह क्षेत्र चौरासी महाल कहलाता था और उसकी मालगुजारी ९ लाख रुपया थी। बाद में यह घोर जंगल होगया और वर्तमान शताब्दी तक उसका नाम किसी ने न सुना, पर इस शताब्दी के प्रारम्भ में कुख्यात सुल्ताना डाकू द्वारा अपना शरण-स्थल बनाये जाने पर लोगों का ध्यान इस क्षेत्र की ओर आकर्षित हुआ और उसके घने वनों तथा भयंकर जन्तुओं को देखकर अंग्रेजों ने उसे अपना आखेट स्थल बना कर रखा। यहां कुमायूं के प्रसिद्ध नरभक्षी चीता, शेर, हाथी, जंगली सुअर आदि हिंसक पशु बहुतायत से पाये जाते हैं।

परन्तु अब यह क्षेत्र बड़ा गुलजार है। भयानक जंगलों के स्थान पर आधुनिक सभ्यता के समस्त सुविधाजनक उपकरणों से सुसज्जित नये ढंग की बस्तियां बस गई हैं और मलेरिया-ग्रस्त क्षेत्रों को स्वच्छ कर वहां सुन्दर सड़कें, पक्के मकानों, यान्त्रिक कृषि-फार्मों, उत्कृष्ट अस्पतालों, शिक्षालयों, दुग्धशालाओं आदि की भव्य व्यवस्था है। सरकारी फार्म के पार्श्व में ही एक ७ एकड़ क्षेत्रफल का सुन्दर राजकीय उपवन है, जिसमें संतरा, नींबू, चकोतरा, आम, अमरूद आदि के लगभग १,००० वृक्ष हैं। साथ ही उसमें साढ़े ५ हजार से अधिक शृंगारी तथा पुष्प वृक्ष भी हैं। वानस्पतिक वाटिका में १८ हजार फल वृक्षों तथा साढ़े ८ हजार से अधिक शृंगारी पुष्प वृक्षों के मूल भी उगाये जा रहे हैं। नगला में एक प्रथम श्रेणी की दुग्धशाला है, जिसमें उम्दा नस्ल के ६०० से अधिक पशु हैं और उनमें से कुछ तो १५ और १८ सेर दूध प्रति दिन देते ह। दुग्धशाला में डेरी सम्बन्धी सभी प्रकार के आधुनिक यन्त्र, उपकरण आदि हैं और उसका दूध, मक्खन तथा अन्य दुग्ध पदार्थ बरेली और नैनीताल तक भेजे जाते हैं। दुग्धशाला के पार्श्व में ही एक उत्कृष्ट कुक्कुटशाला (पाउल्ट्री-फार्म अथवा मुर्गीखाना) भी है, जहां न केवल अन्डे ही पैदा किये जाते हैं, बल्कि जनता की सुविधा के लिये अच्छी नस्ल के मुर्गों और मुर्गियों के जोड़े भी वितरण के हेतु पाले जाते हैं।

भूमि-क्षरण का नियंत्रण

भूमि के पुनरुद्धार के सम्बन्ध में एक बड़ी समस्या भूमि-क्षरण की है। भूमि-क्षरण अथवा स्वायल इरोजन (soil erosion) मिट्टी के कटाव अथवा फटाव को कहते हैं, जिसने न्यूनाधिक मात्रा में हमारे राज्य की सम्पूर्ण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भूमि के पंचमांश को प्रभावितकर रखा है। भूमि-क्षरण दो प्रकार का होता है—(१) सामान्य कटाव, जो प्रायः पूरे प्रान्त में प्रचलित है और उसने कम से कम ६० लाख एकड़ भूमि को निश्चित रूप से ग्रस रखा है, जहां पैदावार केवल नाममात्र को होती है और (२) गहन-कटाव, जो विशेषकर नदी-घाटियों में होता है और जिसका रूप अधिक भयानक होता है। सामान्य कटाव विशेष हानिकारक नहीं है और उसका नियन्त्रण भी सरल है, किन्तु गहन कटाव खासतौर पर भयानक होता है। ऐसी भूमि में दरारें पड़ जाती हैं और वहां पानी बिल्कुल नहीं ठहरता। उसका नियन्त्रण असाध्य तो नहीं है, किन्तु कष्टसाध्य अवश्य है। ऐसी भूमि हमारे राज्य में ३० लाख एकड़ से अधिक है और वहां एक दाना भी नहीं उगता।

भूमि-क्षरण के कारण

प्रकृति की अनेक गतियां ऐसी हैं, जिनमें हस्तक्षेप करना मनुष्य के लिये वर्जित है, फिर भी शोषण और संचय का लोभी मानव-प्रकृति की स्वाभाविक गति के साथ खिलवाड़ करने लगता है, तो प्रकृति का दुर्धर्ष-कोष प्रतिशोध की प्रतिक्रिया प्रारम्भ कर देता है। प्रकृति की इन्हीं गतियों में वानस्पत्य-उत्पादन भी है। एक खेती हम करते हैं, सीमित और संयमित मात्रा में, किन्तु उससे भी बड़ी खेती है प्रकृति की, जिसने भूमि के चप्पे-चप्पे को वृक्षों, पौदों और घासों के सुन्दर हरीतिमा से ढंक रखा है। ये वृक्ष, पौदे, घास आदि प्राकृतिक सौन्दर्य की ही वस्तुयें नहीं हैं, उनके निश्चित उपयोग हैं। सृष्टि की प्रगति में वे कुछ विशिष्ट अभिनय करते हैं। उनकी उपयोगिताओं में, उनकी नयनाभिरामता एक है और फल-फूल, अन्न, लकड़ी आदि के रूप में उनकी आर्थिक उपयोगिता भी है, परन्तु इन सबसे भी बड़ा उपयोग यह है कि वे हमारी धरती को हमारे लिये स्थिर रखते हैं और यदि इस उपयोग के महत्व को हम नहीं समझते अथवा समझकर भी उसकी उपेक्षा करते हैं, तो हम अपनी ही धरती माता की हत्या के पातक के भागी हैं।

मिट्टी का स्थिर रहना अथवा जमा रहना मनुष्य के लिये अत्यन्त हितकर है। अस्थिर और भुर-भुरी मिट्टी रेत बन जाती है और वह न खेती के काम की होती है और न बस्ती के, न वहां वानस्पतिक उत्पादन ही हो सकता है और न हरियाली रह सकती है। उसी का नाम मरु-भूमि अथवा रेगिस्तान है। मिट्टी के स्थिर रहने के लिये उसका जमना आवश्यक है और जम वह तभी सकती है, जब उनमें नमी हो। बरसात में तो नमी की कमी का प्रश्न ही नहीं उठता, पर सर्दियों और गर्मियों में भी मिट्टी को नमी मिलती रहे इसके लिये प्रकृति भूमितल के नीचे जल का संचय कर लेती है। इस संचित

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जल को वृक्षों, पौदों और घासों की जड़ें भूमितल के नीचे से खींच-खींच कर ऊपर लाती रहती हैं और इस प्रकार घोर गर्मियों में धरातल की मिट्टी को नमी मिलती रहती है और वह भुर-भुरी होकर फटने नहीं पाती, क्योंकि नमी के कारण उसके कण परस्पर चिपके रहते हैं।

परन्तु जहां वृक्षादि न होंगे वहां क्या होगा? धरती की सतह की मिट्टी को नमी मिलना दुश्वार हो जायगा। एक तो उसके और सूर्यकिरणों के बीच कोई छाया न रहेगी, अतः उसकी ऊपरी नमी शीघ्र सूख जायेगी। इसके अतिरिक्त प्रकृति ने भू-गर्भ के जलागार में उसके लिये जो नीर-निधि संचित कर रखी है, उसका उपयोग भी वह न कर सकेगी, क्योंकि उस जल को ऊपर खींचने वाली जड़ों का अस्तित्व ही न होगा। वह संचित जल भूतल के नीचे यों ही व्यर्थ संचित रहेगा और ऊपर की गर्मी से धीरे-धीरे वह स्वयं ही सूखना प्रारम्भ कर देगा। इधर भूमितल की मिट्टी नमी के अभाव में भुर-भुरी होकर चिटकने लगेगी, क्योंकि उसके कणों को चिपकाने की व्यवस्था का ह्रास हो चुका होगा। इस क्षेत्र में बरसात में जब पानी बरसेगा तो उसकी बौछारों की तीव्रता से यह भुर-भुरी मिट्टी कट-कट कर बहने लगेगी और वहां दरारें पड़ जायेंगी, जो कालान्तर में छोटी-मोटी नालियों और बाद में वृहदाकार नालों का रूप धारण कर लेंगी। इस क्षेत्र में फिर नमी संचित करने का कोई भी साधन प्रकृति के पास न रहेगा, क्योंकि वहां जो पानी बरसेगा वह एक तो मात्रा में अधिक न होगा (यह एक निश्चित सिद्धांत है कि पानी वहीं अधिक बरसता है, जहां घनी वृक्षावली होती है), दूसरे जो कुछ बरसेगा भी, वह नालों में बहकर नदियों में चला जायगा, भूमि अपने संचय के लिये उसे सोख न पायेगी। इस प्रकार ऐसे क्षेत्र में नमी का अभाव सदा के लिये हो जायगा और वह सर्वथा बंजर तथा अनुर्वर हो जायगा, क्योंकि नमी के अभाव में वनस्पति भी तो नहीं जीवित रह सकती है। जहां न जल होगा और न हरियाली, वहां मनुष्य कैसे रह सकता है?

हमारा ३० लाख एकड़ भूमिखंड इसी प्रकार के गहन भूमि-क्षरण का शिकार बन गया है, यह हमारे लिये कम आशंका की बात नहीं है और उससे भी अधिक हमारे लिये शर्म की बात है, क्योंकि हम अपने को सभ्य कहते हैं और यह विपत्ति हमने स्वयं निमंत्रित की है। बता चुके हैं कि मिट्टी की स्थिरता के लिये वृक्षों का अस्तित्व अनिवार्य है, किन्तु हमने अपनी बस्तियां बसाने, खेती करने आदि के लिये तो जंगल काटे ही साथ ही लकड़ी बेचने के लोभ में भी हमने वृक्ष काट डाले। पिछले युद्ध-काल में ही जंगल के जंगल काट डाले गये। उसके बाद भी वृक्षों का काटना उसी दस्तूर से जारी रहा, क्योंकि युद्ध के बाद शहरी जन-संख्या में जो वृद्धि हुई उससे मकान आदि बनाने के लिये तथा अन्य कामों जैसे फर्नीचर आदि के लिये वृक्ष अत्यधिक संख्या में कटे। जमींदारों ने इस अवसर पर और भी प्रकृति-द्रोह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किया। उन्होंने जमींदारी-उन्मूलन की आशंका में अपने समस्त जंगल काट या (कटने के लिये) बेंच डाले। इस प्रकार हम दीर्घकाल से जंगल काटते रहे, पर प्रकृति सम्भवतः हमारा यह उपद्रव अपनी स्वाभाविक उदारता के साथ सह लेती, यदि हम एक पाप न करते। हमारा वह पाप यह था कि हमने वृक्ष काट कर अपनी तात्कालिक आवश्यकता अथवा लालसा की पूर्ति तो कर ली, परन्तु बदले में नये वृक्ष नहीं लगाये।

हमारे इस पाप का दंड भी हमको मिला। हमारी भूमि गहन कटाव के चक्कर में पड़कर मरुभूमि में बदलने लगी। जहां सामूहिक रूप से जंगल के जंगल साफ कर दिये गये, वहां तो इसका भयंकर रूप स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है। हमारा जो सैकड़ों वर्गमील इलाका तेजी से रेगिस्तान में बदल रहा है, वह इस पाप का ही दंड है। आगरा, मथुरा, इटावा आदि जिलों की सीमाओं पर ऐसे विस्तृत भू-खंड देखे जा सकते हैं। हाल ही में भारत सरकार के विशेषज्ञों ने यह प्रगट किया था कि राजपुताना का रेगिस्तान तेजी से उत्तर-प्रदेश की ओर बढ़ रहा है। रेगिस्तान कोई रेल नहीं है, पर इस प्रकार कहने का मतलब यही है कि अपनी राजपुताना वाली सीमा पर हमने सदियों से वृक्ष काटने और उसके बदले नये वृक्ष न लगाने का जो क्रम बांध रखा है उसका फल हमें आज मिल रहा है।

परन्तु अभी यह रोग सर्वथा ही असाध्य नहीं हुआ है। अब भी यदि हम भूमि को उचित मात्रा में नमी पहुंचा सकें तो वह क्षेत्र पुनः हरा-भरा हो सकता है। नमी पहुंचाने के लिये आवश्यक है कि वहां वृक्ष लगाये जांय तथा घासें उगाई जांय। यह काम प्रारम्भ में कुछ कष्टसाध्य अवश्य होगा, किन्तु यदि थोड़े से परिश्रम से बंधिया बनाकर वहां पानी का बहाव रोक दिया जाय और इसी प्रकार नमी पैदा करके घासें उगाई जांय तथा साथ ही पशुओं को उन्हें चर कर नष्ट न करने दिया जाय, तो घासें जड़ पकड़ लेंगी और धरती में कुछ नमी आ जायगी। फिर बड़े पौदे और वृक्ष भी उगाये जा सकेंगे और कालान्तर में वहां हरीतमा पुनः लहलहा उठेगी और इस प्रकार जो लाखों एकड़ भूमि किसी काम नहीं आ रही है, बल्कि हमारी अच्छी भूमि को भी काटने की घात कर रही है, उपयोगी और उपजाऊ भूमि में बदल जायेगी। वन-महोत्सव इसी उद्देश्य से प्रारम्भ किया गया है।

यह तो गहन-कटाव की बात हुई। भूमि के कटाव की दूसरी समस्या सामान्य-कटाव की है, जो न्यूनाधिक रूप से राज्य भर में फैला हुआ है। इसका कारण भूमितल का विषम होना है, जिसके कारण ऊपरी क्षेत्र में जल रुकने नहीं पाता और ढाल से होकर नीची भूमि की ओर बहने लगता है। इस प्रकार ऊपरी क्षेत्र में आवश्यक नमी न रहने के कारण वहां भी वैसी ही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रक्रियायें होने लगती हैं, जिनकी चर्चा ऊपर कर चुके हैं। परन्तु वह भारतीयों किसानों के लिये नई बात नहीं है, इस देश में उसका इतिहास उतना ही पुराना है जितना पुराना भारतीय कृषि का इतिहास है। हमारा किसान उससे सदा लोहा लेता रहा है और उसपर उसने सदा विजय भी प्राप्त की है। मेड़बन्दी तथा बंधियां बनाकर इस रोग की समुचित चिकित्सा कर दी जाती रही है। मेड़बन्दी से पानी का बहाव रुक जाता है और बन्धियां बनाने से आवश्यक मात्रा में पानी रोक लिया जाता है और केवल फालतू पानी ही निकलने दिया जाता है। परन्तु पिछली एक या डेढ़ सदी से हमारे किसान के ये प्रयास बहुत कुछ शिथिल रहे हैं, पर जन-प्रिय शासन के स्थापित होने के पश्चात् किसान की असमर्थतायें और अक्षमताएं बहुत कुछ दूर करदी गई हैं और सरकारी प्रचार तथा प्रोत्साहन के फलस्वरूप इस दिशा में उत्साहवर्द्धक काम हो रहा है। सरकार ने भूमि-क्षरण रोकने के लिये एक विशेष कार्यालय कृषि-विभाग के एक डिप्टी डायरेक्टर की अध्यक्षता में स्थापित किया है। इस विभाग ने हस्तिनापुर (मेरठ), गोवर्द्धन (मथुरा) तथा कुछ अन्य क्षेत्रों में वृक्षारोपण द्वारा भूमि-क्षरण रोकने की समुचित व्यवस्था की है। परन्तु यह वृहद् कार्य केवल सरकारी प्रयास से ही पूरा नहीं हो सकता। उसको व्यापक जन-समर्थन और जन-सहयोग की आवश्यकता है और किसान यदि इस दिशा में सक्रिय हो जांय, तो अपनी भूमि को मरु-भूमि में बदलने से रोकना उनके लिये कठिन न होगा।

वृक्षारोपण का महत्व

भूमि के कटाव की चर्चा करते हुये ऊपर बता चुके हैं कि भूमि का कटाव रोकने तथा उपजाऊ प्रदेशों को मरु-भूमि में बदलने से बचाने के लिये वृक्षारोपण हमारे लिये अनिवार्य है। वृक्ष न केवल भूमि का कटाव रोकते हैं, बल्कि वे हमारे खेतों का उत्पादन भी बढ़ाते हैं। यह भी एक प्राकृतिक प्रक्रिया है। प्रतिवर्ष वृक्षों में पतझड़ होता है। अनेक वृक्ष पुराने होकर सड़ा-गिरा भी करते हैं। पतझड़ के पत्ते और वृक्षों की टहनियों के टुकड़े हवा से उड़ कर हमारे खेतों में पहुंचते हैं और उनमें सड़ कर उनके लिये अत्युत्तम खाद का निर्माण करते हैं। यह तो सर्वविदित है जहां वृक्षों का आधिक्य होता है वहां वर्षा अधिक होती है। यह एक वैज्ञानिक सत्य भी है। इसी कारण वृक्ष हमारे लिये श्रद्धेय हैं। जितना ही बड़ा और फैलावदार वृक्ष होता है, उतना ह वह पूज्य माना जाता है। बरगद, पीपल, पाकड़ का इसी लिये महातम है। बरगद और पीपल की विस्तृत रूप से पूजा होती है। पाकड़ की लकड़ी का तो ऐसा महत्व है कि राजतिलक के समय राजा के बैठने का पीढ़ा उसी की लकड़ी से बनाने का विधान है। इन वृक्षों को सामान्यतः काटा नहीं जाता और इसका कारण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धर्मान्धता नहीं, बल्कि उनकी उपयोगिता है । इन वृक्षों पर पक्षी बसेरा लेते हैं और यदि वे न हों तो ये पक्षी हमारे खेतों पर बैठ जायं और उन्हें चुग डालें । फल और लकड़ी के रूप में वृक्षों द्वारा हमें जो आर्थिक लाभ होता है, वह तो सर्वविदित है ।

वन-महोत्सव से सम्बन्धित वृक्षारोपण आन्दोलन के सिलसिले में वृक्षों के महत्व पर बहुत कुछ प्रचारित किया जा चुका है और इस पुस्तक में भी अब तक जो कुछ कहा गया है, उससे अधिकाधिक संख्या में वृक्षारोपण के महत्व को यथेष्ट प्रकाश मिलता है । पर बहुतेरे लोग यह समझते हैं कि वन-महोत्सव अथवा वृक्षारोपण एक सरकारी आन्दोलन है और पेड़ लगाना सरकार का काम है । परन्तु पिछले प्रकरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वृक्षारोपण सरकारी आन्दोलन नहीं है, बल्कि प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है और उसको इस दिशा में उत्साह-पूर्वक प्रयत्नशील होना चाहिये । पूर्णतया सरकारी रूप में तो यह कार्य किया जा सकना असम्भव है । सरकार अधिकाधिक यही कर सकती है कि अपनी भूमि में वृक्ष लगा दे तथा लोगों को वृक्षारोपण के सम्बन्ध में उचित सलाह और सहायता दे, यथा बीज तथा पौदे आदि वितरित करे और उनकी देख-रेख के बारे में उचित परामर्श दे । परन्तु देख-रेख करने वाले तो अन्ततः नागरिक ही हैं । अतएव अपने हित में, अपने समाज के हित में तथा अपने राष्ट्र के हित में हमारा प्रधान कर्त्तव्य है कि हम जितने सम्भव हों वृक्ष लगायें और लगायें ही नहीं उनकी समुचित देख-रेख करके उन्हें बड़े और समर्थ होने तक उनकी रक्षा करें । बताया जाता है कि पिछले वन-महोत्सवों में अधिकांश वृक्ष अंकुरित होकर सूख गये और इस प्रकार नष्ट हो गये । यह आरोप सर्वथा तो सत्य नहीं है, फिर भी शासन से भी अधिक जनता का यह कर्त्तव्य है कि अपने जीवनदाता वृक्षों को सूख न जाने दें ।

जल-मग्न भूमि का पुनरुद्धार

हम भूमि के पुनरुद्धार की बात कर रहे थे और उसी प्रकरण में हमें उस भूमि के पुनरुद्धार की आवश्यकता के प्रति संकेत करना पड़ा, जो भूमि-क्षरण अथवा मिट्टी के कटाव से अनुपयोगी है, यद्यपि साधारण परिश्रम से उसको उपयोगी और उपजाऊ बनाकर हम अन्नोत्पादन के लिये उसे प्रयुक्त कर सकते हैं । इसी सिलसिले में वृक्षारोपण का भी जिक्र आया, पर यह सब तो उस भूमि के बारे में था, जहां पानी नहीं ठहरता और जो नमी के अभाव से नष्ट हो रही है । पर साथ ही उस भूमि की समस्या भी कम गहन नहीं है, जो निचले तल पर स्थित है और जहां आस-पास के क्षेत्रों का पानी आकर भर जाता है । हमारे राज्य में ऐसी भूमि का क्षेत्रफल लगभग २६ लाख

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एकड़ है और उसका पुनरुद्धार अन्नोत्पादन के लिये पर्याप्त अतिरिक्त भूमि प्रदान कर सकता है। जन-प्रतिनिधि सरकार ने इस जल-मग्न भूमि से पानी निकालने के लिये जल-निकास (ड्रेनेज) की अनेक योजनाएं कार्यान्वित की हैं। इनका जल नालियों, नालों आदि से निकालकर किसी केन्द्रीय स्थान पर संचित किया जाता है, जहां जलागार बनाने के लिये बन्धियां बनाई गई हैं। इस प्रकार जल-मग्न भूमि का उद्धार भी होता जा रहा है और साथ ही उसके जल का उपयोग केन्द्रीय जलागारों से नहरें निकाल कर सिंचाई के लिये भी हो रहा है। साथ ही जहां पानी रह ही जाता है, वहां जलोत्तोलन-पम्प लगाकर पानी उठाया जाता है और वह आस-पास के ऊंचे खेत सींचने के काम आता है।

भूमि का गैरसरकारी पुनरुद्धार

अन्नोत्पादन बढ़ाने के प्रयास में भूमि के पुनरुद्धार में जो विस्तृत प्रयत्न सरकार ने किये हैं, उनका विवरण दिया जा चुका है, परन्तु यह उपकरण अधूरा रह जायगा, यदि इस सम्बन्ध में किसानों द्वारा स्वयं किये गये प्रयत्नों पर प्रकाश न डाला जाय। पथरीली चट्टानों को भी तोड़ कर वहां अपने परिश्रम से अन्न उगा लेने वाला किसान नई भूमि तोड़ने के लिये उत्सुक न हो ऐसी बात नहीं है किन्तु इसमें सबसे बड़ी बाधा जमींदारी पद्धति रही है। परन्तु शासन पदारूढ़ होने के पश्चात् किसान की ये सभी असमर्थतायें दूर कर दीं गईं और नई भूमि तोड़ने के लिये उसे कानूनी अधिकार ही नहीं दिये गये बल्कि भूमि के पुनरुद्धार के निमित्त उसे अनेक प्रकार की नई सुविधायें भी प्रदान की गईं। जहां जमींदारों ने उन्हें रोका अथवा भूमि के पुनरुद्धार में बाधक हुए, वहां किसानों ने जिला मजिस्ट्रेटों की अनुमति से नई भूमि तोड़ ली और सर्किल रेट के हिसाब से लगान बंधा लिया। जहां भूमि के बड़े-बड़े एकजाई टुकड़े मिल गये, वहां ट्रैक्टरों की सहायता से उन्हें तोड़ने में सहायता दी गई। राज्य के अनेक जिलों में सरकारी ट्रैक्टरों के दस्ते इसलिए रखे गये कि वे किराये पर लोगों के लिये भूमि तोड़ें। अनेक जिलों में लोगों को निजी ट्रैक्टर खरीदने के लिये उन्हें ऋण दिये गये। सरकारी प्रोत्साहन के फलस्वरूप किसानों ने लाखों एकड़ भूमि तोड़ ली और ताजे अंकों के अनुसार गैरसरकारी प्रयत्नों के फलस्वरूप अब तक पौने ६ लाख एकड़ से अधिक भूमि तोड़ी जा चुकी है। नई टूटी भूमि के लिये सिंचाई की विशेष सुविधा की भी व्यवस्था की गई।

ऊसर भूमि का पुनरुद्धार

हमारे राज्य में १४,९८,३६४ एकड़ ऊसर भूमि है और उसके पुनरुद्धार के लिये जल का बाहुल्य प्रधान उपकरण है। सरकार की ऊसर भूमि-सुधार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समिति ने ऊसरों के सुधार के लिये सिंचाई की सुविधाओं के विशेष प्रबन्ध की सिफारिश की है और इसी कारण सरकार ने उन लोगों को जो ऊसर भूमि का पुनरुद्धार करना चाहें यह सुविधा दी है कि जिन दिनों साधारण भूमि की सिंचाई के लिये नहरों के पानी का उपयोग न होता हो, उन दिनों ऊसर भूमि की सिंचाई के लिये तालाबों में पानी भरा जा सकता है और इस पानी के लिये उनसे तब तक कोई आबियाना (जल-कर) न लिया जायगा जब तक उनके ऊसर में फसल न उगने लगेगी।

भूमि का पुनरुद्धार एक नजर में

वर्ष	नौतोड़ का रक़बा एकड़ों में		
	सरकारी प्रयत्नों के फलस्वरूप	सरकारी प्रोत्साहन पर गैरसरकारी प्रयत्नों से	योग
१९४७–४८	२८,०००	अप्राप्य	२८,०००
१९४८–४९	३२,०००	२,७०,०००	३,०२,०००
१९४९–५०	२९,२४०	३,५०,७५०	३,७९,९९०
१९५०–५१	५७,८१८	२,५५,०००	३,१२,८१८
महायोग	१,४७,०५८	८,७५,७५०	१०,२२,८०८

फिर भी खाद्य-समस्या क्यों न सुधरी ?

इतने अल्पकाल में इतनी व्यापक सफलता प्राप्त कर लेना वास्तव में गर्व की बात है। उपर्युक्त नक्शे से एक बात यह भी स्पष्ट हो जाती है कि भूमि के पुनरुद्धार के लिये सरकार ने यद्यपि स्वयं भी विस्तृत पैमाने पर प्रयत्न किये हैं, किन्तु साथ ही गैरसरकारी प्रयास भी शिथिल नहीं रहा है और उसने इस मोर्चे पर सरकार के साथ घनिष्ठ सहयोग किया है, जो शासन के प्रति उसकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

असीम आस्था का द्योतक है। यदि जन-सहयोग न मिला होता, तो भूमि के पुनरुद्धार में इतनी विस्तृत सफलता कभी प्राप्त न होती। परन्तु इन अंकों को देख कर स्वतः एक प्रश्न उठता है कि जब इतनी भारी सफलता प्राप्त कर ली गई, तो खाद्य-समस्या अब भी क्यों न सुधरी ?

इसके अनेक कारण हैं। नौतोड़ भूमि तुरन्त ही औसत उत्पादन नहीं करने लगती। कुछ दिन उसे बनाने संवारने की आवश्यकता पड़ती है। पहिले न्यून उत्पादन होता है, परन्तु कालान्तर में उपयुक्त खाद-खुराक मिलने पर वह अधिक अन्नोत्पादन करने लगती है। ऊपर के नक्शे से विदित होगा कि अधिकांश भूमि हाल ही में पिछले दो वर्षों के भीतर तोड़ी गई है, बहुतेरी तो इसी वर्ष के प्रारम्भ में। अतएव उसमें तो अभी उत्पादन शुरू ही हुआ होगा, अभी से उसके फल की आशा कैसे कर सकते हैं ? फिर सम्पूर्ण क्षेत्र में केवल खाद्यान्न ही नहीं उपजाये जाते। विभाजन के बाद देश में जूट की जो कमी हो गई है उसके कारण कुछ भूमि जूट के लिये प्रयुक्त हो रही है। यह इस राज्य का सौभाग्य है कि यहां के कुछ भागों में, विशेषकर तराई में, जूट की उम्दा खेती हो सकने की सम्भावना प्रमाणित हो गई है। ऐसी डालर-अर्जन-कारी वस्तु का उत्पादन हमारे आर्थिक हित में आवश्यक है। कपास की खेती का रकबा भी बढ़ाने की व्यवस्था हो रही है, क्योंकि विश्व के बाजारों में रुई की कीमत बहुत तेज हो गई है और यदि मान भी लें कि यह सारी भूमि केवल खाद्यान्नों के उत्पादन में ही प्रयुक्त हो जाय और उसकी औसत पैदावार भी १० मन प्रति एकड़ अथवा कुछ अधिक ही होने लगे तो भी समस्या का समाधान नहीं होता, क्योंकि पहिले ही बता चुके हैं कि हमारी अन्न सम्बन्धी तात्कालिक अतिरिक्त आवश्यकता सात लाख टन अथवा लगभग दो करोड़ मन वार्षिक की है। नौतोड़ भूमि से अभी कुछ काल तक हम इतने अन्नोत्पादन की आशा नहीं कर सकते। यहीं प्रगाढ़ कृषि-कर्म (इंटेंसिव कल्टीवेशन) के महत्व पर विचार करने की आवश्यकता है, क्योंकि केवल कृषि-क्षेत्र के प्रसार से ही समस्या का निराकरण नहीं हो सकता। हमारी अन्न-अभाव की समस्या तभी हल हो सकती है, जब हम अपनी भूमि की औसत पैदावार बढ़ायें। यह सफलता हमें प्रगाढ़ कृषि-कर्म से ही मिल सकती है।

"जैसा बोओ, तैसा काटो"

प्रगाढ़ कृषि-कर्म के परिचयात्मक प्रकरण में बता चुके हैं कि प्रस्तुत भूमि पर पैदावार बढ़ाने के लिये जिन बातों की आवश्यकता है, उनमें उत्तम बीज, उपयुक्त खाद तथा सिंचाई की समुचित सुविधा का विशेष महत्व है। संयुक्त-राष्ट्र संघ के खाद्य तथा कृषि-संगठन (यूनाइटेड नेशन्स फूड ऐण्ड एग्रीकलचरल आर्गेनाइजेशन) ने हाल ही में जापान में कुछ अनुसन्धान किये थे और उस सिलसिले में विदित हुआ है कि जापान में प्रति एकड़ अधिक पैदावार का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुख्य कारण यह है कि जापानी किसान अपने बीजों के चुनाव पर बहुत अधिक ध्यान देता है और केवल स्वस्थ, पुष्ट एवं उन्नतिशील बीज का ही उपयोग करता है। स्वयं हमारे यहां भी लोकोक्ति है—"जैसा बोओ, तैसा काटो"। पैदावार का रूप, गुण और परिमाण मुख्यतः प्रयुक्त किये गये बीज के ही अनुरूप होता है। बीज की शुद्धता तथा उसकी पुष्टता का हमारे अन्नोत्पादन पर इस प्रकार गहरा प्रभाव पड़ता है।

उत्तम बीजों की व्यवस्था के हेतु शासन ने उपयुक्त प्रबन्ध किये हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व कृषि-विभाग की आलोचना का मुख्य विषय बीजों और उनके वितरण के सम्बन्ध में उसके रुख के बारे में था। परन्तु लोकप्रिय-शासन ने सत्ता ग्रहण करते ही इस ओर समुचित ध्यान दिया और आज तो कृषि-विभाग की सारी कार्रवाइयां बीज-भन्डार को ही केन्द्र बना कर संचालित की जा रही हैं। बीजों के सम्बन्ध में शासन ने उनके उत्पादन और वितरण की उत्कृष्ट व्यवस्था की है। कृषि-अनुसन्धानशालाओं की न केवल संख्या वृद्धि की गई, बल्कि सुदक्ष विशेषज्ञों और वैज्ञानिकों की देख-रेख में उन्नतिशील बीजों के नमूने तैयार कराये गये और इन नमूनों को सरकारी फार्म पर बोया गया। हाल में १४ हजार एकड़ के जो राजकीय यांत्रिक कृषि-फ़ार्म स्थापित हुये हैं, उनमें इन बीजों को उगाया जा रहा है और शीघ्र ही लगभग ३० हजार एकड़ में ये बीज उगने लगेंगे। अब प्रत्येक सरकारी बीज-भण्डार में उन्नतिशील बीज पहुंच गये हैं और इसी वर्ष के अन्त तक प्रत्येक सहकारी बीज-भण्डार में भी वैसे ही बीज पहुंच जायेंगे। इस प्रकार कुछ ही समय में सभी बीज-भण्डारों से केवल उन्नतिशील अर्थात् सुधरी किस्म के बीज मिलने लगेंगे। इन बीजों का परिमाण प्रति वर्ष बढ़ता ही जायगा, क्योंकि उनके बोने पर जो बीज उपलब्ध होंगे, वे भी सुधरी किस्म के ही तो होंगे। बीजों के वितरण में शासन ने विगत चार वर्षों में कितनी प्रगति की है, उस पर निम्नलिखित नक्शे से पर्याप्त प्रकाश पड़ता है :—

वर्ष	वितरण (मनों में)		
	रबी	खरीफ़	योग
१९४६–४७	१०,००,९४८	२,४२,०९९	१२,४३,०४७
१९४७–४८	१०,१३,९२७	४,००,३३९	१४,१४,२६६
१९४८–४९	१२,६१,९९२	२,८१,३६०	१५,४३,३५२
१९४९–५०	१२,१३,१६६	५,३०,३५४	१७,४३,५२०
महायोग	४४,९०,०३३	१४,५४,१५२	५९,४४,१८५

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धरती की खूराक

हमारी भूमि की पैदावार घटने के कारणों में मुख्य यह है कि उसकी उर्वरता बढ़ाने की ओर हमने सदा उपेक्षा का भाव प्रदर्शित किया है। धरती को हमने कभी उसकी भूख भर खूराक नहीं दी है, फिर भी उससे आशा करते हैं कि वह हमें धन-धान्य से परिपूर्ण रखे। हम अपने आहार के लिये सदा प्रयत्नशील रहते है और आज जब उसमें कमी पड़ रही है, हम उसकी अभिवृद्धि के लिये प्रयत्नशील है और आहार के लिये अन्न तथा अन्य वस्तुओं के उत्पादन के बढ़ाने के निमित्त योजनायें बनाते और उन्हें कार्यान्वित करने का प्रयत्न करते है, पर यह नहीं सोचते कि यदि हमने धरती-माता के प्रति उपेक्षा का भाव न रखा होता, यदि उसको उसकी अपनी खूराक के सम्बन्ध में भूखा न रखा होता, तो हमारी यह दुरवस्था न होती। बूढ़ी माता को भूखा रखने वाले पुत्र के घर अभाव और दारिद्रय न बरसेगा तो और क्या होगा? धरती का भोजन है खाद, पर हमने अपने इस कर्त्तव्य का पालन करने में कभी स्फूर्ति नहीं दिखाई है और हमारे इस शैथिल्य का ही परिणाम है कि आज हम विकट खाद्य-संकट से ग्रस्त हैं।

अन्य प्रगतिशील देशों में तो भूमि की उर्वरता बढ़ाने के निमित्त अनेक प्रकार की रासायनिक खादों का व्यवहार होने लगा है, परन्तु हमारे यहां जो प्राकृतिक खादें अनायास ही और मुफ्त में उपलब्ध हैं, हम उनका भी समुचित उपयोग नहीं करते और उनमें से अधिकांश—गोबर इत्यादि—को जलाकर नष्ट कर डालते हैं, पर धरती को नहीं देते। खादों की यों तो अनेक किस्में हैं, पर मुख्यतः उनको चार वर्गों में विभाजित किया जाता है, यथा (१) कम्पोस्ट खाद, (२) हरी खाद, (३) खली और (४) रासायनिक खाद। हमने उनके नाम उनके महत्व के क्रमानुसार ही लिखे हैं।

रासायनिक खाद यद्यपि तात्कालिक और त्वरित परिणाम देने में अत्यन्त समर्थ है, किन्तु उसका निरन्तर उपयोग खेतों के लिये अधिक हितकारी नहीं होता है। ऊसर तथा नौतोड़ भूमि की उपज बढ़ाने के लिये उसका उपयोग लाभकारी हो सकता है, किन्तु चलतू खेतों में उसका निरन्तर प्रयोग हानिकर हो सकता है, यदि खेत का मालिक उच्च वैज्ञानिक कृषि की शिक्षा प्राप्त किये हुये नहीं है और रासायनिक तत्वों के गुण दोषों से भली-भांति परिचित नहीं है। साधारणतया हमारे यहां अमोनिया सल्फ़ेट और अमोनिया फ़ास्फेट का उपयोग होता है। उनका उत्पादन हमारी आवश्यकता से बहुत कम होता है। इन दोनों रसायनों की हमें प्रतिवर्ष ४—५ लाख टन की मात्रा में आवश्यकता होती है, जिसमें से अधिकांश बाहर से आयात करना होता है। परन्तु सिंदरी स्थित राजकीय रासायनिक खाद कारखाना अब चालू हो गया है और हमारी आवश्यकता का एक बड़ा भाग उससे पूरा हो सकेगा। उससे भी उत्तम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक अन्य रासायनिक खाद सुपरफ़ास्फ़ेट है, जिसका उत्पादन ५० हजार टन के आस-पास होता है, पर इस उत्पादन को आसानी से दोगुना किया जा सकता है। अस्थि-चूर्ण होने के कारण बहुतेरे किसानों में फ़ास्फ़ेटों के उपयोग से दूर रहने की जो प्रवृत्ति थी, वह कृषि-विभाग के प्रचार से घटने लगी है। उत्तर प्रदेश सरकार ने अस्थि-चूर्ण के उत्पादन के लिये किसानों की सहकारिता समितियां संगठित करने का उद्योग प्रारम्भ किया है। ये समितियां कुटीरोद्योग के तरीके पर अस्थि-खाद तैयार करेंगी। एक अन्य प्रशंसनीय कदम सरकार ने इस सम्बन्ध में यह उठाया कि फ़ास्फ़ेट रसायनयुक्त खादों का मूल्य नियंत्रित कर दिया है, ताकि किसानों को वे सस्ती कीमत पर मिल सकें। शीरा भी एक अच्छी रासायनिक खाद है। प्रयोगों से ज्ञात हुआ है कि बोवाई से एक से तीन मास पूर्व तक यदि खेत शीरे से पांस दिया जाय और दो-तीन बार उसमें पानी दिया जाय तथा हर पानी के बाद उसे जोत दिया जाय, तो पैदावार बढ़ जाती है।

रक्त-खाद

चौंकिये मत! बात विचित्र अवश्य मालूम पड़ेगी, परन्तु रक्त-खाद भी खेतों की पैदावार बहुत बढ़ाती है। इसका यह अर्थ नहीं कि हम एक दूसरे के गले रेतने शुरू कर दें। आवश्यक मात्रा में रक्त-खाद सुलभ करने के निमित्त सरकार ने उपयुक्त व्यवस्था की है। उसने राज्य की सभी म्यूनिसिपैल्टियों को लिखा है कि उनकी सीमा में स्थित कसाई-खानों में जो जानवर काटे जाते हैं, उनका रक्त यों ही नष्ट न होने दिया जाय, बल्कि उसे संग्रहीत करके खेतों में खाद के लिये इस्तेमाल किया जाय। कानपुर में पिछले दिनों इसका प्रयोग किया गया और कसाईखानों से लगभग ३०० मन रक्त संग्रहीत किया गया, जिसे खेतों में डाला गया और किसानों ने अत्यन्त उत्साहवर्द्धक रिपोर्ट दी, जिस पर कानपुर, आगरा, अलीगढ़, बनारस, बदायूं, मुरादाबाद, गोरखपुर, मऊ, जौनपुर, फिरोजाबाद, फैजाबाद तथा इलाहाबाद की म्यूनिसिपैल्टियों ने अपने यहां रक्त-खाद संग्रहीत करना स्वीकार कर लिया है तथा अन्य म्यूनिसिपैल्टियों से ऐसा ही करने का अनुरोध किया गया है। खली की खाद भी अनेक फसलों को बहुत लाभ पहुंचाती है।

हरी खाद

परन्तु खली के मूल्य में निरन्तर वृद्धि होने के कारण उसका उपयोग घटता जा रहा है और उसका स्थान हरी खाद ले रही है। हरी खाद के रूप में सनई अधिक प्रसिद्ध है। नगीना स्थित चावल-अन्वेषणशाला में प्रयोगों द्वारा देखा गया कि धान के खेत में सनई की हरी खाद देने से पैदावार की वृद्धि में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रासायनिक खाद की अपेक्षा दोगुना लाभ होता है। जहां सनई प्रभृति हरी खाद सम्भव न हो, वहां फसलों में हेर-फेर करने वाली दाल की फसलें बोने से भी अच्छा काम निकल जाता है। कृषि-विभाग ने प्रयोगों द्वारा स्थिर किया है कि धान के साथ चना मटर आदि का हेर-फेर करने से भूमि की उर्वरता स्थिर रहती है। फसलों के हेर-फेर का एक अन्य लाभदायक क्रम मूंगफली, अरहर, गन्ने का है। दूसरा ऐसा ही लाभकारी क्रम मूंग, आलू, गेहूं का है। इस हेर-फेर के कारण भूमि की उर्वरता के जो तत्व एक फसल में उससे निकल जाते हैं, दूसरी फसल में वे ही वापस आ जाते हैं और अन्य निकल जाते हैं, तथा दूसरी फसल जो तत्व ले लेतीं हैं उनकी पूर्ति तीसरी में हो जाती है और इस प्रकार उपभोग और पूर्ति का एक क्रम बना रहता है, जिससे उर्वरता कम नहीं होने पाती। भारत जैसे देश में, जहां आराज़ियां छोटी-छोटी हैं, इस प्रकार से फ़सलों की हेर-फेर बड़ी ही लाभदायक हो सकती है।

कम्पोस्ट—खाद

भारत की भांति चीन में भी आराज़ियां छोटी-छोटी हैं, पर वहां पैदावार का औसत हमारे यहां से दोगुना बल्कि उससे भी कुछ अधिक ही है। इसका मुख्य कारण है कि चीन के किसान हमारी भांति पंडिताई के आदी नहीं हैं और जहां ईमानदारी से परिश्रम द्वारा धनोपार्जन का सवाल है, वहां वे सामाजिक प्रतिष्ठा की आड़ लेकर नहीं बैठते और अन्न का उसके सभी रूपों में उपयोग करते हैं, उस रूप में भी जिसे हम मल कहते हैं और जिसको छूना तो दूर उसके दर्शन मात्र से ही घिनाते हैं। मल-मूत्र हमारे लिये अत्यन्त उपयोगी पदार्थ हैं और हमारे अन्नोत्पादन में वे अन्यन्त महत्वपूर्ण अभिनय कर सकते हैं, यदि हम वास्तव में उनका सही उपयोग उचित ढंग से करने को प्रस्तुत हों।

कम्पोस्ट मल-मूत्र तथा कूड़ा-करकट के ढेर के अतिरिक्त कुछ नहीं है, पर उसका निर्माण एक निश्चित विधि के अनुसार होना चाहिये। मनुष्य के मल-मूत्र से हम भले ही घिना लें, परन्तु जानवर के मल-मूत्र से तो नहीं घिनाते। गोबर और गोमूत्र तो हमारे लिये पवित्र वस्तुयें हैं। किसी काल में उनकी पवित्रता खेत के लिये थी, किन्तु हमारा अन्धविश्वास उसे केवल उनके मौखिक गुणगान तक ही सीमित रखने लगा है। पशुओं का गोबर तथा मूत्र कम्पोस्ट के अनिवार्य अंग हैं। कम्पोस्ट बनाने की दो विधियां हैं, यथा ग्रामीण कम्पोस्ट और शहरी कम्पोस्ट।

ग्रामीण—कम्पोस्ट

ग्रामीण-कम्पोस्ट के भी दो रूप हैं—एक गोबर और गौमूत्र की कम्पोस्ट होती है। इसके लिये ८ गज लम्बा, १ गज चौड़ा तथा इतना ही गहरा गढ़ा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खोदा जाता है और उसकी तह में हरा कूड़ा बिखेर दिया जाता है। उसके ऊपर गोबर तथा गोबर और पशु-मूत्र से सनी हुई मिट्टी (जो रात को ही पशु के नीचे बिछा दी जाती है), भूसे या चारे का अवशेष आदि की एक तह जमाई जाती है। इसके ऊपर आधा इंच मोटी एक तह मिट्टी की डाली जाती है। यह मिट्टी अगर पशु-मूत्र से सनी हो तो अत्युत्तम, अन्यथा पानी से भी छिड़क कर उसे नम किया जा सकता है। प्रतिदिन यही क्रिया दोहराई जाती है, जब तक कि गढ़ा ऊपर तक भर न जाय। भर जाने पर उसे मिट्टी से पाट कर लीप देते हैं। थोड़े-थोड़े दिनों के बाद उसको खोल कर बांस से उसको चला दिया जाता है। तीन मास में कम्पोस्ट तैयार हो जाता है। खेत में तो वह सोना बरसा देता है।

ग्रामीण कम्पोस्ट का दूसरा रूप मनुष्य के मल-मूत्र से भी बनता है। इसके लिये गांव से बाहर वैसा ही गढ़ा खोदा जाता है, जैसा ऊपर बता चुके हैं। फ़र्क इतना है कि इस पर लकड़ी के डेढ़-डेढ़ दो-दो बित्ता चौड़े पटरे एक-एक फुट के फासले पर रख दिये जाते हैं और प्रत्येक दो पटरों के बाद बांस या किसी अन्य चीज की टट्टी लगा दी जाती है, ताकि आड़ हो सके और लज्जा निवारण किया जा सके। इन्हीं पटरों पर बैठकर ग्रामीण मल-मूत्र त्याग करते हैं और एक निश्चित समय पर वहां गांव का कूड़ा बिखेर दिया जाता है। इस प्रकार गांव में यत्र-तत्र मल-मूत्र नहीं पड़ा रहता और सफाई रहती है तथा इस सार्वजनिक शौचालय में मक्खियां भी नहीं भिनभिनातीं। इस तरह मनुष्य के मल-मूत्र तथा गांव के कूड़े के ढेर एक दूसरे पर चढ़ते रहते हैं और जब पूरा गढ़ा भर जाता है तो उसे मिट्टी से बन्द कर दूसरा गढ़ा खोद कर चालू किया जाता है। दो मास पश्चात् बन्द गढ़े का मलमूत्र और करकट आपस में मिलकर उत्तम खाद बन जाते हैं। हमारे राज्य की ग्रामीण जनसंख्या साढ़े पांच करोड़ है और यदि वह चाहे तो १ करोड़ टन उत्तम कम्पोस्ट तैयार कर सकती है।

शहरी कम्पोस्ट और सीवेज

शहरी कम्पोस्ट बनाने की विधि भी वही है, जैसे ऊपर बताई है, परन्तु एक तो वह शहर से बाहर बनेगी, जिसके लिये मल-मूत्र, कूड़े-करकट की ढुलाई की व्यवस्था होना आवश्यक है, दूसरे कम्पोस्ट के गढ़े में डाले जाने वाले कूड़े में से कांच, धातु के टुकड़े तथा इसी प्रकार के अन्य चीजों को छांट कर बाहर निकाल देना भी आवश्यक है। अतएव यह काम म्युनिसिपैल्टियां अथवा टाउन एरिया कमेटियां ही कर सकती हैं। जनता का शासन स्थापित होने पर इस राज्य में इस दिशा में ध्यान दिया गया और १९४७ ई० से ही म्युनिसिपल कर्मचारियों को इस प्रकार कम्पोस्ट बनाने की शिक्षा दी जाने लगी। इसके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लिये सुसंघटित केन्द्र खोले गये, जिनकी सफलता निम्नलिखित नक्शे से स्पष्ट हो जायगी :—

वर्ष	केन्द्र संख्या	कम्पोस्ट-निर्माण	कम्पोस्ट की विक्री
		टन	टन
१९४७–४८	१४७	१,८०,७६०	१,४८,६३०
१९४८–४९	१८३	२,४४,६६७	२,०५,६६७
१९४९–५०	२२०	३,१४,४१४	२,६०,१३०

खाद सम्बन्धी सरकारी प्रयत्न

कम्पोस्ट-निर्माण को शासन ने सर्वाधिक महत्व दिया है और उसके प्रयत्नों के फलस्वरूप ग्रामीणों तथा अन्य लोगों ने कम्पोस्ट-निर्माण में पिछले चार वर्षों में कितनी प्रगति की है, यह नीचे के नक्शे से प्रकट है। साथ ही हरी खाद के लिये सरकार ने सनई के बीजों का जो वितरण किया तथा खली और रासायनिक खाद की जैसी व्यवस्था की, उस पर निम्नलिखित नक्शे से प्रकाश पड़ता है :—

(संख्याएं मनों में)

वर्ष	कम्पोस्ट निर्माण	सनई वितरण	खली वितरण	रासायनिक खाद
१९४६–४७	५४,८६,५४०	९,३५८	३,७३,६१७	४,३८,६६९
१९४७–४८	२,०१,९४,०३४	२८,६८६	३,०७,०५६	२,७७,९२४
१९४८–४९	३,२९,११,३२९	३७,६०३	२,७६,९३८	५,६३,८७३
१९४९–५०	३,८३,८७,०००	३६,०९०	१,५१,२६५	६,५५,१२७

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सिचाई की सुविधा

अन्नोत्पादन बढ़ाने के लिये उत्तम बीज और उपयुक्त खाद के साथ-साथ सिंचाई की समुचित सुविधा की भी एक अनिवार्य आवश्यकता है और उसके सम्बन्ध में शासन ने क्या किया है, इस पर विचार कर लेना भी आवश्यक है। हमारे राज्य में अधिकांश आराजियां छोटी-छोटी हैं और हमारे किसान, अपने बल पर सिंचाई के सम्बन्ध में यदि कुछ कर सकते हैं, तो यही एकाध कुआं बनवा लें, परन्तु सिंचाई की विस्तृत व्यवस्था का दायित्व शासन पर ही है। सौभाग्यवश हमारे देश में जल की कमी नहीं। हमारे पहाड़ों, हमारी नदी-घाटियों तथा हमारे भू-गर्भ में जल का अक्षय भन्डार स्थित है और वास्तविकता तो यह है कि हम उस जल का सदुपयोग नहीं कर पाये हैं। हमारे पहाड़ों तथा नदी-घाटियों का ९० प्रतिशत जल बाढ़ तथा नदी-प्रवाह के रूप में व्यर्थ वह जाता है। यदि हम उसका उचित दोहन करने की व्यवस्था करें, तो हमें अपने खेतों की सिंचाई के लिये पर्याप्त जल भी मिल जाय और अपने औद्योगिक उत्कर्ष तथा कौटुम्बिक उपभोग के लिये सस्ती जल-विद्युत भी उपलब्ध होने लगे। विदेशी शासन ने इस दिशा में अधिक ध्यान नहीं दिया था, पर स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् जनता के शासन ने अपने प्रदेश की अपार जल-शक्ति का सदुपयोग करने की अनेक योजनायें बनाई हैं, जिनमें से कुछ कार्यान्वित हो चुकी हैं, कुछ हो रही हैं और कुछ पर काम शुरू होने को है।

हमारे राज्य की अभिसिंचन-व्यवस्था विश्व की सबसे बड़ी अभिसिंचन व्यवस्थाओं में से है और सम्भवतः बहुतों को ज्ञात न होगा कि हमारी शारदा नहर-श्रृंखला संसार की नहर-व्यवस्थाओं में सब से बड़ी है। वह सर्वथा अंग्रेजों की ही देन नहीं है, उसका बहुत कुछ विकास लोकप्रिय शासन द्वारा हुआ है। अंग्रेजों ने अपने एक शताब्दी के शासन-काल में नहरों का जैसा विकास किया, वह ४८ लाख एकड़ से अधिक भूमि को न सींच सकता था, पर जन-सत्ता वाले मन्त्रिमंडल ने अपने पांच ही वर्ष के अल्प शासन-काल में १,२०० मील की नई नहरें और बम्बे बना डाले, जिनसे १० लाख एकड़ भूमि को पानी मिलने लगा है तथा ७०० मील की नहरों और बम्बों का निर्माण इन दिनों चल रहा है, जिनसे अन्य लाखों एकड़ भूमि को पानी मिलने लगेगा। इसके अतिरिक्त ५२७ नल-कूप स्थापित करके इस शासन ने दो लाख एकड़ से अधिक भूमि को पानी पहुंचाया तथा ६४५ अन्य नल-कूपों की स्थापना पर काम हो रहा है, जिनसे २।। लाख एकड़ से अधिक अन्य भूमि को जल मिलने लगेगा। कूपों तथा अन्य अभिसिंचन साधनों का भी उसने समुचित विकास किया है, जिस पर आगे विचार करेंगे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अभिसिंचन-व्यवस्थाओं के रूप

सिंचाई की व्यवस्थाओं के दो मुख्य रूप हैं, यथा बृहद् अभिसिंचन-व्यवस्था और लघु अभिसिंचन-व्यवस्था। प्रथम व्यवस्था के अन्तर्गत नहरों, नल-कूपों, बांध-बंधियों आदि का वर्ग है और वहां अधिक विस्तृत व्यवस्था होती है तथा उसमें अधिक प्रचुर अर्थ-व्यय एवं व्यापक संघटन की आवश्यकता होती है, जिसकी व्यवस्था साधारण किसान के लिये असम्भव है और उसको राज्य की ओर से ही कार्यान्वित किया जा सकता है। दूसरी व्यवस्था कूपादि द्वारा सिंचाई करने की है, जो सामान्य किसान की शक्ति के अन्दर है। इसे वह स्वयं भी कार्यान्वित कर सकता है और यदि इसमें उसको राज्य से उचित सहायता मिल जाय तो क्या कहने हैं। वस्तुतः देखा जाय तो नहरों की अपेक्षा कूपों की व्यवस्था अधिक लाभकारी है। नहरों के पानी में एक तो वे तत्व नष्ट हो जाते हैं, जो कूप के ताजे जल में होते हैं, दूसरे नहरों के साथ नदियों की रेत भी बहकर खेतों में पहुंच जाती है और उनकी उर्वरता पर विपरीत प्रभाव डालती हैं। आर्थिक दृष्टि से भी देखा जाय, तो कूप-निर्माण संस्था और सरल है और नहर-निर्माण में प्रचुर पूंजी लगती है, यद्यपि उससे उतना लाभ नहीं मिलता जितना कूप जल से।

नहर-निर्माण

फिर भी नहरों का अपना महत्व तो है ही और वर्तमान शासन ने उनके निर्माण में शिथिलता नहीं दिखाई है। बड़ी-बड़ी नहरों का निर्माण आसान बात नहीं है। उन पर करोड़ों का व्यय होता है और बड़े-बड़े बांध बनाने पड़ते हैं, जहां नदियों का जल रोक कर नहरें निकाली जाती हैं। इस सम्बन्ध में शासन ने रिहन्द, नायर आदि बड़ी-बड़ी योजनायें बनाई हैं, जहां वृहदाकार बांध बनाकर पहाड़ी घाटियों में जल रोका जायगा और उस जल से दो काम लिये जायेंगे, एक तो नहरों के लिये पानी तथा दूसरे ऊंचाई से पानी गिराकर उससे सस्ती जल-विद्युत का निर्माण। इनमें से प्रत्येक योजना कई-कई करोड़ की है। वर्तमान आर्थिक संकट में, जब कि विभाजन के बाद की व्यवस्था, आबादी की अदल-बदल तथा अन्य अनेक कारणों से व्ययों में वृद्धि हो रही है, इन बड़ी योजनाओं की गति को मन्द कर देना पड़ा, परन्तु उन्हें बिल्कुल ही नहीं उठा रखा गया और रिहन्द की विशाल योजना को, जिसे कुछ काल पूर्व स्थगित कर दिया गया था, कार्यान्वित करने के आदेश जारी कर दिये गये हैं। बड़ी-बड़ी नहरों के निर्माण में एक और खतरा भी है और वह यह कि उससे हमारी नदियों का पानी घट जाता है। गंगा-जमुना की नहरें इसका प्रमाण हैं। विशेषज्ञों का कहना है कि यदि गंगा से नहरें न निकाली जातीं तो उसमें इतना पानी रहता कि कलकत्ता से कानपुर तक बड़े बड़े स्टीमर चलते और यातायात

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

की एक बड़ी समस्या हल हो जाती। अस्तु, नदियों के अतिरिक्त हमारे पास वाढ़ के पानी का भी वड़ा भारी भंडार है, जो प्रतिवर्ष हमारे राज्य की चौथाई करोड़ एकड़ से अधिक भूमि को जलमग्न कर देता है तथा इधर-उधर बह कर मलेरिया आदि रोग उत्पन्न करता है। यदि इस जल का समुचित उपयोग किया जाय, तो तीन लाभ हों, सिंचाई के लिये जल मिल जाय, जलमग्न बहुतेरी भूमि खेती के लिये निकल आये तथा रोगों का प्रसार बन्द हो जाय। विदेशी शासन को इस सिरदर्द को मोल लेने की क्या आवश्यकता थी, परन्तु लोकप्रिय शासन ने इसका समुचित महत्व समझा और तदनुसार कार्य किया।

बन्धियों से नहर-निर्माण

इस वाढ़ के पानी को संचित करने के लिये जल-निकास तथा बंधियां अर्थात् छोटे-छोटे बांध बनाने की आवश्यकता पड़ती है। जलमग्न भूमि के पुनरुद्धार के प्रकरण में बता चुके हैं कि नाले और नालियां बनाकर निचली भूमि का पानी किस प्रकार निकाला जाता है। यह पानी यदि नदियों में व्यर्थ बहाकर समुद्र में चला जाने दिया जाय, तो हमें उससे क्या लाभ हो? शासन ने इस जल का उपयोग सिंचाई में करने का संकल्प किया। इस प्रकार एक ही तीर से दो शिकार हुए, एक तो जलमग्न भूमि का उद्धार होकर हमें खेती के लिये अतिरिक्त क्षेत्र मिल गया तथा दूसरे उसी जल का सदुपयोग भी कर लिया गया। इस जल का संचय करने के लिये स्थान-स्थान पर वंधियां बनाने की व्यवस्था की गई। अब तक ललितपुर, नगवा, सपरार, कबराई आदि के बांध बन गये हैं और उनके द्वारा लाखों एकड़ भूमि को जल मिलने लगा है। इनके अतिरिक्त भावर नदी पर सिरसी नामक स्थान पर बांध बनाकर बेलन नहर का निर्माण हो रहा है, जो एक लाख एकड़ भूमि की सिंचाई करेगी। इसमें से ४० हजार एकड़ भूमि टोंस नदी के पूर्व की ओर तथा ६० हजार एकड़ यमुना और टोंस की घाटियों में इलाहाबाद-रीवां रोड के पार्श्वों में स्थित है। इसी प्रकार रंगवां बांध द्वारा ६० हजार एकड़ भूमि की सिंचाई की व्यवस्था बुन्देलखन्ड में की जा रही है। झांसी तथा हमीरपुर जिलों में अन्य छोटी-छोटी बंधियां बनाकर हजारों एकड़ भूमि को पानी देने की व्यवस्था की जा रही है।

नहरों का विस्तार

वर्तमान नहरों का विस्तार करके भी लाखों एकड़ क्षेत्र को पानी पहुंचाया गया। शारदा नहर में ही ८०० मील से अधिक जल-प्रणालियों का विकास किया गया। घाघरा तथा गरईं नहरों में नये बम्बे बनाकर २० हजार तथा शाहगंज के रजबाहे में वृद्धि करके १० हजार एकड़ क्षेत्र को पानी पहुंचाने की व्यवस्था हो रही है। शारदा नहर की दरियाबाद शाखा में २०० मील लम्बे बम्बों के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri
भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
वाराणसी। 9142

निर्माण का काम शुरू हो गया है और वह शीघ्र ही घाघरा तथा कल्याणी नदियों के बीच की घाटी के पौन लाख एकड़ क्षेत्र को पानी देना शुरू कर देंगे। इसी प्रकार इसी नहर की प्रतापगढ़ शाखा में भी बम्बों का विस्तार कर ५० हजार एकड़ से अधिक क्षेत्र को पानी देने की व्यवस्था की जा रही है। बनारस तथा मिर्जापुर जिलों में भी ऐसी ही व्यवस्था हो रही है।

नल-कूपों का विकास

बड़ी और लम्बी नहरों की अपेक्षा नल-कूपों से उपलब्ध जल अधिक लाभकारी होता है, क्योंकि लम्बे बहाव के कारण उसके आवश्यक और गुणकारी रासायनिक तत्व नष्ट नहीं होते और न वह रेत बहाकर लाता है। नल-कूप औसतन ४०० एकड़ को अच्छी तरह पानी दे सकता है, अतएव उसके पानी को लम्बे बहाव की आवश्यकता नहीं पड़ती और उसका जल कूप-जल की भांति ही लाभकारी होता है। इसीलिये मन्त्रिमंडल ने नहरों के विकास की अपेक्षा नल-कूपों के विकास को अधिक महत्व दिया है। अब तक ५२७ नल-कूप स्थापित किये जा चुके हैं, जिनसे २,११,००० एकड़ भूमि को पानी मिल रहा है तथा ६४५ अन्य नल-कूपों के निर्माण का काम जारी है और कुछ ही मास में २,५५,००० एकड़ भूमि को सींचना शुरू कर देंगे। अपनी पन्द्रह-वर्षीय नल-कूप विकास योजना के अन्तर्गत शासन ने ५,२६३ और नल-कूप स्थापति करने का संकल्प किया है, जिनमें से ४,००० पूर्वी जिलों में स्थापित होंगे और साढ़े १५ लाख एकड़ से अधिक रकबे को पानी देंगे। इसके अतिरिक्त निजी नल-कूपों की स्थापना को भी प्रोत्साहित किया जाता है।

पन्द्रह-वर्षीय योजना

सिंचाई की व्यवस्था के विकास के लिये मंत्रिमंडल ने एक पन्द्रह-वर्षीय योजना बनाई है, जिसके अन्तर्गत १९६१ ई० तक २५ लाख ५२ हजार एकड़ क्षेत्र को पानी मिलने लगेगा। इस योजना के अनुसार राज्य की नहर-प्रणाली में २,४५० मील की वृद्धि करनी है, जिसमें से १,२०० मील की वृद्धि हो चुकी है तथा ७०० मील पर काम लगा है, जिसका अर्थ यह है कि प्रथम पांच वर्षों में ही नहर विकास का काम आधे से अधिक पूरा हो चुका है। इसी प्रकार बन्धियों तथा जलागारों द्वारा १५ वर्ष में लगभग पौने चार लाख एकड़ को पानी दिये जाने की व्यवस्था है, जिसमें से प्रायः सवा दो लाख एकड़ को १९५१ के अन्त तक पानी मिलने लगा है। इस प्रकार प्रथम पांच वर्ष में ही इस योजना का भी ५० प्रतिशत काम पूरा कर दिया गया। नल-कूपों के सम्बन्ध में तो ऊपर बता ही चुके हैं। इस प्रकार जिस गति से शासन सिंचाई-व्यवस्थाओं के विस्तार में प्रयत्नशील है, उसे देखते हुये तो प्रतीत होता है कि उसकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पन्द्रह-वर्षीय योजना दस ही वर्ष में पूरी हो जायगी। पर यदि १५ वर्ष भी लग जांय, तो भी वह उसके लिये गौरव की बात होगी। १५ वर्ष में साढ़े पच्चीस लाख एकड़ क्षेत्र को पानी देने की व्यवस्था कर देना साधारण बात नहीं है। इसकी तुलना पिछले विदेशी शासन से कीजिये जिसने एक शताब्दी में केवल ४८ लाख एकड़ को ही पानी पहुंचाया और उस समय खर्च कम था, मजदूरी सस्ती थी तथा सामान प्रचुरता से मिल जाता था और आजकल खर्चा अधिक है, मजदूरी मंहगी है तथा सामान मिलने में बड़ी कठिनाई है।

कूप-निर्माण

कुओं द्वारा सिंचाई की प्रथा भारत में अत्यन्त प्राचीन है। सिंचाई की सर्वोत्कृष्ट विधि भी यह है। नहरों का व्यापक विकास होने पर भारतीय किसान ने अभी तक इस उपयोगी अभिसिंचन-विधि की उपेक्षा नहीं की है और आज भी नहरों से जितनी भूमि सींची जाती है उससे कहीं अधिक कुओं द्वारा सींची जाती है। कुयें द्वारा सिंचाई करने से अनेक लाभ हैं, एक तो कुएं के ताजे जल में वे सभी रासायनिक तत्व विद्यमान रहते हैं, जिनकी भूमि को आवश्यकता है, नहर के पानी में अनेक ऐसे तत्व नष्ट हो चुके होते हैं। दूसरे कुएं के जल से खेत में रेत नहीं पड़ती, पर नदियों का पानी लाने से नहरों द्वारा खेत में रेत आ जाती है। तीसरे अपना कुआं होने पर सिंचाई की पूरी स्वतंत्रता रहती है, जब चाहा पानी दिया, न तो नहर खुलने की प्रतीक्षा करनी पड़ती है और न अपनी बारी का इन्तजार करना पड़ता है। चौथे जब अनावृष्टि के कारण नदियों में पानी कम हो जाता है, तो स्वभावतः नहरों में भी पानी घटता है। ऐसे अवसर पर अपना कुआं ही काम चला सकता है।

कूप-निर्माण के लिये सरकारी सुविधाएं

इन्हीं कारणों से वर्तमान शासन ने किसानों को नहरों के बजाय कूप-जल का अधिक उपयोग करने की सलाह दी और कुओं के निर्माण में उन्हें समुचित सुविधायें देने की व्यवस्था की और वे सभी प्रतिबन्ध हटा दिये गये, जो विदेशी शासन ने कुएं बनाने पर लगा रखे थे और किसानों को उसके लिये तकावी ऋण देने का पर्याप्त प्रबन्ध कर दिया। सरकार ने घोषणा की कि पक्के कुएं बनाने के लिये वह नियंत्रित मूल्य पर सामग्री देगी और बनवाई के खर्च का एक-तिहाई (अधिकाधिक ५०० रु० तक) वह सहायता के रूप में देगी और सामग्री भी वस्तुतः किसान को बिना ब्याज के तकावी-ऋण के रूप में मिल जाती है। इसके अतिरिक्त पुराने कुओं की मरम्मत, अन्धे कुओं को गहराने, कुओं में नल गलाने तथा कुओं में रहट लगाने के लिये सरकार ने उदारतापूर्वक सहायता दी। पुराने कुओं की मरम्मत के लिये केवल लागत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मूल्य पर सामग्री दी जाती है और आवश्यकता पड़ने पर तकावी-ऋण भी दिया जाता है। नल गलाने के लिये नल और जाली आदि नियन्त्रित मूल्य पर दी जाती है, आधे खर्च के बिना ब्याज की तकावी मिल जाती है, नल लगाने के खर्च का २० प्रतिशत तक, यदि वह १०० रु० से अधिक न हो, सहायता के रूप में दिया जाता है तथा सरकार मुफ्त सलाह देती और नल लगाने के काम की देख-भाल की व्यवस्था कर देती है। कुओं से आसानी से पानी निकालने के लिये रहटों के वितरण की समुचित व्यवस्था ही नहीं की गई, यह प्रबन्ध भी किया गया कि इन रहटों में लगने वाले डोल आदि प्रत्येक क्षेत्र में स्थानिक रूप से बनाये जांय, ताकि किसानों को उन्हें वक्त पर बदल सकने म सहूलियत हो।

कूप-निर्माण और कूप-सुधार की प्रगति

इन सरकारी प्रोत्साहनों के फलस्वरूप राज्य में कूप-निर्माण तथा कूप-सुधार का एक तीव्र आन्दोलन सा चल पड़ा, जिसके अन्तर्गत कुओं द्वारा सिंचाई की व्यवस्था का समुचित विकास हुआ। इस दिशा में होने वाली प्रगति पर निम्नलिखित नक्शे से पूरा प्रकाश पड़ता है :—

विषय	१९४६-४७	१९४७-४८	१९४८-४९	१९४९-५०	१९५०-५१	योग
कूप-निर्माण	५०४	९४१	२,१५९	८,०००	१०,८१६	२२,४२०
कूप-सुधार	५५६	१,३४६	१,४३४	१,९६३	४,०५२	९,३५१
रहट लगाना	२५	४४५	५६२	४,९७२	३,६८०	९,६८४

विगत जून तक राज्य में साढ़े बाइस हजार नये पक्के कुयें बन चुके हैं तथा उन्हीं दिनों ८ हजार अन्य कुओं का निर्माण हाथ में था और उनमें से अधिकांश अब तक बन चुके होंगे। हमारे राज्य में लगभग १३ लाख कुयें ऐसे हैं, जिनसे सिंचाई का काम लिया जाता है। उनमें से प्रायः दो-तिहाई अर्थात् लगभग ८। लाख पक्के हैं, जिनमें से लगभग ७ लाख पूरी तरह काम में लाये जाते हैं। यदि उन सभी में रहट लग जांय तो उनसे सिंचाई का रकबा आसानी से दूना हो जाय, परन्तु इसमें कुछ व्यावहारिक कठिनाइयां हैं, यथा लोहे और टीन की आवश्यक मात्रा का अभाव। शासन इस अभाव

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के बावजद जितना भी सम्भव है प्रयास कर रहा है और अधिकाधिक कुओं में रहट लगाने के लिये सहायता करने को उत्सुक है।

जलोत्तोलन-पम्प

नहरों और कुओं के अतिरिक्त झील, तालावों, नदी, नालों का पानी उठा कर भी सिचाई की जा सकती है। इस प्रकार सींचा जाने वाला क्षेत्र २०-२५ लाख एकड़ से अधिक न था, पर वर्तमान सरकार ने पानी उठाने के लिये पम्पों की व्यवस्था करके इस कठिनाई को दूर कर दिया और इस प्रकार सींचा जाने वाला क्षेत्र ३१ लाख एकड़ तक बढ़ गया। हमारे राज्य में प्रायः चौथाई करोड़ एकड़ भूमि जल-मग्न हो जाया करती है। यदि इस प्रकार पम्पों की प्रचुरता हो जाय तो उसका पानी उठा कर सूखी भूमि को पहुंचाया जा सकता है और पम्पों द्वारा ही एक-डेढ़ करोड़ एकड़ क्षेत्र को पानी पहुंचाया जा सकता है। पर आवश्यक संख्या में पम्प नहीं मिल रहे हैं, यद्यपि जनता में उनकी मांग काफी है। सरकार ने इस प्रकार के पम्पों के सप्लाई की समुचित व्यवस्था की है और जैसे-जैसे पम्प मिलते जाते हैं, उन्हें विभिन्न जिलों में लगाने का इन्तजाम किया जाता है। सन् १९५० में पूर्वी जिलों में ऐसे पम्प काफी संख्या में लगाये गये थे और वहां सूखा पड़ने पर उनकी उपयोगिता भली-भांति प्रमाणित हो गई थी। पम्प लगाने का काम सहकारिता समितियों द्वारा अच्छी तरह हो सकता है और सरकार ऐसी समितियों के संगठन को प्रोत्साहित करने को प्रस्तुत है। सन् १९५० में सरकार ने पूर्वी तथा मध्यवर्ती जिलों में १०० पम्प लगाये थे, १९५१ ई० में १६५ पम्प लगाये जाने की व्यवस्था की गई थी।

फ़सलों की सुरक्षा

जैसा कि पहिले बता चुके हैं कि उत्तम वीज, अच्छी खाद और समुचित सिंचाई भूमि की उत्पादन-शक्ति बढ़ाने के लिये आवश्यक है, उसी प्रकार फसल की सुरक्षा भी अन्नोत्पादन बढ़ाने के लिये अनिवार्य है। अर्थ-शास्त्रियों ने हिसाब लगाया है कि रोगों, कीड़ों, पक्षियों तथा जानवरों द्वारा भारत में प्रतिवर्ष ५ अरब रुपये का अन्न नष्ट हो जाता है और केवल उत्तर प्रदेश में ही कम से कम ५० करोड़ रुपये का गल्ला इस प्रकार हर साल नष्ट हो जाता है। १९४७ ई० में हिसाब लगाया गया तो विदित हुआ कि गेरुई लग जाने से ही कम से कम २० लाख टन गेहूं नष्ट हो गया। विचार कीजिये प्राचुर्य और बाहुल्य के युग में इस प्रकार की हानि पर चाहे अधिक ध्यान न भी दिया जाय, किन्तु इन दिनों जब देश में भयंकर अन्न-संकट छाया हुआ है, इस प्रकार [illegible] सहन किया जा सकता है?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वर्तमान मंत्रिमंडल ने पद-ग्रहण करने के एक ही वर्ष के भीतर अपने कृषि विभाग के अन्तर्गत एक 'फसल सुरक्षा शाखा' का संगठन किया, जिसका उद्देश्य है विभिन्न फसलों, विशेषकर खाद्यान्न की फसलों, शाक-भाजी की फसलों, फल-फूल, वृक्षों, आलू, प्याज, फलों तथा आगारित अन्न आदि को सुरक्षा की व्यवस्था करना और उन्हें कीड़ों, जानवरों तथा रोगों से यथासाध्य बचा कर देश और समाज के लिये अधिकाधिक खाद्य-सामग्री उपलब्ध करना। इसके लिये सरकार ने एक कीट विशेषज्ञ (एंटमालोजिस्ट) के अधीन लगभग सवा चार सौ कर्मचारियों की एक फसल सुरक्षा वाहिनी का संगठन किया तथा उन्हें जिलों में इसी काम के लिये नियुक्त किया। वे ग्रामीण क्षेत्रों में दौरे करते हैं और किसानों को अपनी फसलों की सुरक्षा के सम्बन्ध में व्यावहारिक शिक्षा देते हैं।

कृषि-शिक्षा का प्रसार

कृषि-शिक्षा प्रसार के निमित्त स्वतंत्रता-प्राप्ति के उपरान्त व्यापक व्यवस्थायें हुई हैं। कानपुर कृषि-कालेज के प्रसार के निमित्त युद्ध से पूर्व स्थापित प्रथम उत्तरदायी-मन्त्रिमंडल ने ही योजना बनाई थी और उसका थोड़ा विकास हुआ भी, पर युद्ध-काल में गवर्नरी शासन में यह काम रुक गया। १९४६ ई० में सत्तारूढ़ होने पर मंत्रिमंडल ने कानपुर कृषि-कालेज का विस्तृत विकास तो किया ही, नैनी तथा लखावटी के कृषि-कालेजों को भी पर्याप्त सहायता दी। परन्तु कालेजों की शिक्षा अधिकतर सरकारी नौकरी अथवा कृषि सम्बन्धी अन्वेषणात्मक ज्ञान अर्जित करने के लिये ही होता है, साधारण किसान उससे लाभ नहीं उठा सकता। अतएव कृषि-स्कूलों का विकास किया गया और अब तो कृषि हमारी शिक्षा-पद्धति का एक महत्वपूर्ण अंग बन गई है तथा सम्पूर्ण राज्य में प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा-क्रम में उसका एक अत्यन्त विशिष्ट स्थान है। परन्तु सबसे अधिक महत्वपूर्ण है कृषि की व्यावहारिक शिक्षा, जो भावी किसानों को ही नहीं, वर्तमान किसानों को भी रूढ़िवादी कृषि के चक्कर से छुड़ाकर उन्हें प्रस्तुत उपकरणों से ही लाभप्रद कृषि करने और उससे अधिकाधिक अन्नोपार्जन की विधि सिखा सके।

अग्रसर कृषि योजना

किसानों की प्रस्तुत स्थितियों में ही प्रगाढ़ कृषि-कर्म की शिक्षा देने तथा भूमि की उर्वरता तथा अन्नोत्पादन बढ़ाने की विधि सिखाने के लिये उत्तर प्रदेश के कृषि विभाग ने एक सर्वथा नये प्रयोग का श्रीगणेश किया है, जिसे 'अग्रसर कृषि योजना (पाइलट प्रोजेक्ट) कहते हैं। यह योजना इस सिद्धान्त पर आधारित है कि सदियों के राजनीतिक दमन तथा आर्थिक शोषण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से किसान ने अपने मन में जीवन के एक उदासीन निरानन्द चित्र को अंकित कर लिया है और वह अपनी खेती केवल इसलिये करता है कि उसे खेती ही करनी है और उसी से अपना काम किसी प्रकार चला लेना है। मरे हुए हताश मन से एक प्रकार की सेट मशीन की भांति वह अपना यह कर्तव्य किसी तरह पूरा कर देता है, पर न तो उसके मन में उत्साह है और न तन में स्फूर्ति। अग्रसर कृषि योजना का उद्देश्य यह है कि किसान को उसके निरानन्द वातावरण के घेरे से निकाला जाय, उसके संकीर्ण दृष्टिकोण को विस्तृत किया जाय, अपने काम में उसकी स्वाभाविक रुचि उत्पन्न की जाय, उसके समक्ष व्यावहारिक प्रयोग करके उसको दिखाया जाय कि किस प्रकार वह अपनी भूमि की उर्वरता बढ़ा सकता है और इस प्रकार उसे अपने परिश्रम का सदुपयोग करने के लिये प्रेरित किया जाय। इसमें संदेह नहीं कि इस प्रकार की योजना स्वतंत्रता मिल जाने के बाद ही कार्यान्वित की जा सकती थी, क्योंकि ऐसे कार्य का एक मनोवैज्ञानिक महत्व भी है। अब विचार करना है कि सरकार की यह योजना कहां तक सफल हुई ?

अग्रसर योजना का प्रयोग

अग्रसर योजना का सर्वप्रथम प्रयोग इटावा जिले के एक ऐसे क्षेत्र में किया गया, जो यमुना और सेंगुर नदियों के बीच में स्थित है तथा उसमें एक ऐसा भाग भी है, जहां भूमि-क्षरण (मिट्टी के कटाव) के कारण नाले बन गये हैं। इस क्षेत्र में ९७ ग्राम हैं, जिनमें १२,७२० परिवार रहते हैं। ग्रामों का सम्पूर्ण क्षेत्रफल ६१,३७८ एकड़ है, जिसमें से ४५,४६९ एकड़ भूमि पर खेती होती है। अग्रसर योजना के अन्तर्गत निश्चित किया गया कि वहां पानी की रोकथाम करके भूमि-क्षरण रोका जाय, सिंचाई के लिये जल-प्रणालियां बनाई जांय, खेती के नये औजार तथा नई विधि की और उसके साथ-साथ पशुपालन की भी शिक्षा किसानों को दी जाय, ग्रामीणों को सफाई के साथ रहने तथा स्वास्थ्य-रक्षा की शिक्षा दी जाय तथा इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये शिक्षण-शिवरों, चौपाल-बैठकों, सिनेमा प्रदर्शन आदि की व्यवस्था की जाय। प्रौढ़ शिक्षा की एक योजना भी इसी के साथ शामिल कर ली गई। इसके लिये ऐसे कर्मचारियों के दल तैयार किये गये, जो कर्तव्यनिष्ठ और परिश्रमी हों, जिन्हें अपने हाथ से साधारण काम करने में लाज न लगती हो, जो श्रम की प्रतिष्ठा और उसके महत्व को हृदय से समझते ही नहीं कार्यान्वित भी करते हों और जो ग्रामीणों और किसानों को उपर्युक्त विषयों में ज्ञान-दान करने में समर्थ हों।

इन देशभक्त कर्मचारियों ने किसानों में घुलमिल कर काम किया और बाबूगीरी छांटने के बजाय वे उनके साथ फावड़ा लेकर काम करते थे, फलतः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किसानों न खेती और पशु-पालन के आधुनिक तरीकों को मन लगा कर सीखा। पहिले ही वर्ष सात सौ एकड़ क्षेत्र में उपज बढ़ी, दूसरे वर्ष यह रकबा बढ़ कर ३,१०० एकड़ हो गया। इस ३,१०० एकड़ क्षेत्र के किसानों ने अपनी भूमि पर औसत दर की अपेक्षा १५,००० मन अधिक गेहूं पैदा किया, जिससे उनको पौने तीन लाख रुपये की अधिक आय हुई। इसी प्रकार ४० एकड़ के एक अन्य टुकड़े के किसानों ने अपने खेतों में नये ढंग से आलू की खेती की, जिसपर उन्हें २० हजार रुपये की अतिरिक्त आय हुई। इसी प्रकार शाक-भाजी उगाने वालों ने एक अन्य टुकड़े पर ५ हजार रुपये की अतिरिक्त आय की। इन सब कामों के लिये किसी वैज्ञानिक डिगरी की आवश्यकता नहीं हुई। साधारण किसानों ने ही अपने स्वाभाविक परिश्रम से अधिक अन्न उपजा कर यह लाभ उपार्जित किया। इसका रहस्य केवल वही है, जिसका वर्णन पिछले पृष्ठों में कर चुके हैं, अर्थात् उत्तम बीज, उपयुक्त खाद, समुचित सिंचाई, आवश्यक देख-रेख आदि।

योजना का उद्देश्य केवल कृषि-उत्कर्ष तक ही सीमित नहीं था। अतएव कृषि-कर्म तथा पशु-पालन की शिक्षा के साथ-साथ प्रौढ़ शिक्षा का कार्य भी चला और सैकड़ों वयस्क ग्रामीणों को साक्षर बनाया गया। सैकड़ों ग्रामीणों को अग्रसर योजना के कार्य में दक्ष कर दिया गया, ताकि वे अपने अन्य बन्धुओं को उसकी शिक्षा दे सकें। ग्रामों में सफाई आदि की व्यवस्था की गई और लोगों में स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों का अभ्यास डालने का प्रचार किया गया। उन्हें कृषि औजार सरलता से उपलब्ध हों, इसके लिये क्षेत्रों के एक केन्द्रीय स्थान में एक छोटा-सा कारखाना भी स्थापित किया गया। योजना ग्रामीणों में इतनी लोकप्रिय हुई कि उसकी सफलता से उत्साहित होकर मंत्रिमंडल ने गोरखपुर, आजमगढ़, गाजीपुर तथा देवरिया जिलों में भी उसका प्रसार किये जाने का आदेश दिया और वहां भी उस पर सफलतापूर्वक काम हो रहा है।

अन्वेषण और अनुसन्धान

प्रायः सभी उन्नतिशील देशों में कृषि सम्बन्धी अन्वेषणों और अनुसंधानों की राजकीय व्यवस्था है। उन्होंने प्रयोगशालायें स्थापित कर रखी हैं, जिनमें कृषि के विकास के निमित्त वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा अन्वेषण और अनुसंधान कार्य सम्पन्न होते रहते हैं। इन वैज्ञानिकों द्वारा की जाने वाली खोजें व्यावहारिक रूप में किसानों के लिये अत्यन्त उपयोगी और लाभप्रद होती रहती हैं। हमारे राज्य में भी अंग्रेजी शासन-काल से ही इस प्रकार की कृषि प्रयोगशालायें स्थापित हैं, किन्तु उनके अन्वेषणों तथा अनुसंधानों का किसानों ने बहुत कम लाभ उठा पाया। इसका सर्वप्रमुख कारण यह था कि इन वैज्ञानिकों तथा किसानों के बीच का अन्तर बहुत व्यापक था और उनके अनुसंधानों का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विवरण किसान तक पहुंच ही न पाता था। वैज्ञानिकों के परिणाम बहुधा कृषि विज्ञान विशारदों के विवादों अथवा कृषि-कालेजों की पढ़ाई तक ही सीमित रहते थे। अधिकतर काम अंग्रेजी में होता था और किसानों के लिये कभी-कभी कुछ पुस्तिकायें हिन्दी में छप भी जाती थीं, उनमें दी हुई बातें किसानों तक नहीं पहुंच पाती थीं।

दूसरे उनका प्रचार भी व्यावहारिक नहीं था। किसान यही नहीं जानना चाहता है कि कौन सी-विधि अथवा कौन-सा रसायन उसके खेत की उपज बढ़ा देगा। उसको तो आवश्यकता इस बात की थी कि उसके सामने उस विधि अथवा रसायन विशेष का प्रयोग करके दिखा दिया जाय कि इससे तुमको इतना लाभ होता है। लोकप्रिय शासन ने अपनी अग्रसर योजना, जिसका वर्णन ऊपर कर चुके हैं, इसी उद्देश्य से चालू की थी और यही कारण है कि किसान ने उसको उत्साहपूर्वक ग्रहण किया। शासन ने कृषि-विभाग को हुकूमत की कुर्सी से उतार कर उसको किसान का शिक्षक, पथ-प्रदर्शक और सखा बना दिया। इसके लिये उसने हाल ही में इस विभाग में एक नई शाखा को जन्म दिया है, जिसे प्रसार सेवा (एक्सटेंशन सर्विस) कहते हैं।

प्रसार-सेवा

प्रसार-सेवा (एक्सटेंशन सर्विस) का कार्य कृषि-विभाग तथा किसान के बीच एक लड़ी का काम करना है। उसके उद्देश्य, (१) फसलों के अधिकाधिक उत्पादन तथा उनकी सुरक्षा के सम्बन्ध में कृषि विभाग के वैज्ञानिकों द्वारा किये गये अन्वेषणों से किसानों को भली-भांति अवगत करना, (२) प्रकृति के विपर्ययों के विरुद्ध युद्ध करने और उम्दा फसल पैदा करने में उनकी मदद करना तथा (३) आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद फसलें पैदा करने के लिये उन्हें समुचित सलाह और सुझाव देना है। इस सेवा का संघटन प्रत्येक तहसील में प्रसारित हो गया है। इसके लिये २२५ सुदक्ष अधिकारियों का एक दल तैयार किया गया ह। उनके अन्तर्गत १,००० से अधिक व्यावहारिक शिक्षक, १,३५० बीज भंडार-संचालक, २६० कम्पोस्ट-निर्माण शिक्षक, २१७ फसल-सुरक्षा शिक्षक कर्मचारी हैं। उद्यान (बागवानी) प्रसार के लिये पहाड़ों में सहकारिता समितियों के सुपरवाइजरों तथा मैदानी इलाकों में मालीगीरी की उपयुक्त शिक्षा प्राप्त किये कर्मचारियों की नियुक्ति हुई है।

मिट्टी की जांच

मिट्टी की जांच की चर्चा खाद वाले प्रकरण में भी की जा सकती थी, किन्तु इसका उल्लेख यहां करना इसलिये उचित समझा गया, ताकि किसानों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के हित तथा अन्नोत्पादन बढ़ाने के निमित्त सरकार द्वारा किये गये अन्वेषणात्मक प्रयत्नों पर एक ही साथ विचार किया जा सके। मिट्टी की जांच की आवश्यकता इसलिये पड़ती है, ताकि किसान को बताया जा सके कि उसके खेत की मिट्टी कैसी है, उसमें कितनी उर्वरा शक्ति है, उसे किन पोषक तत्वों की आवश्यकता है, उसमें कैसी खाद पड़नी चाहिये, उसमें फसलों की कैसी फेर बदल से अधिक अन्न उपजाया जा सकता है आदि आदि। यों तो किसान पीढ़ियों से अपने खेत को जोत रहा है और अपने खेत के सम्बन्ध में अपनी निजी जानकारी पर वह घमंड कर सकता है, पर उसका ज्ञान खेत के अनुभवों पर आश्रित है, जबकि सरकारी जांच वैज्ञानिक विशेषज्ञों द्वारा होती है और अधिक पूर्ण कही जा सकती है। गंगा खादर में इस प्रकार की जांच ने अत्यन्त सफलतापूर्ण परिणाम दिखाये। बाद में कानपुर, बनारस, बरेली, अलीगढ़, झांसी आदि जिलों से लाई हुई मिट्टी पर भी प्रयोग और अन्वेषण किये गये। इन प्रयोगों के प्रकाश में दी गई सलाहों से इन जिलों में भूमि की पैदावार पर्याप्त रूप से बढ़ाई जा सकी है।

यांत्रिक सहायता

हमारे किसान पुराने ढंग के हलों तथा अन्य औजारों से काम लेने के आदी हैं और उनका यही रूढ़िवादी ढंग उनके खेतों की उपज बढ़ाने में बाधक होता है। कृषि-विभाग की इंजीनियरिंग शाखा ने इसलिये नये प्रकार के हल तथा अन्य औजारों के नमूने किसानों में प्रचारित किये, जिनसे जोताई, बोवाई, निराई, मड़ाई आदि सरलता और अधिक पूर्णता के साथ होती है। वृहद्-यांत्रिक कृषि के सम्बन्ध में भी शासन का रुख सहायतापूर्ण रहा है। उसने करीब पौने पांच सौ ट्रैक्टरों का बेड़ा स्वयं बना रखा है। साथ ही उसने उन लोगों को जो वृहत् स्तर पर खेती कर रहे हैं ट्रैक्टर तथा अन्य विराट यंत्र खरीदने के लिये समुचित आर्थिक सहायतायें दीं।

उत्पादन-प्रतियोगिता

अन्नोत्पादन बढ़ाने के लिये किसानों को प्रोत्साहित करने के लिये शासन ने जहां उनको हर प्रकार की ऊपरी मदद, सलाह, सहायता आदि देने की व्यवस्था की है वहीं एक अन्नोत्पादन-प्रतियोगिता आन्दोलन भी जारी किया है, जिसके अन्तर्गत प्रगाढ़-कृषि कर्म (इंटेंसिव कल्टीवेशन) में अधिकाधिक सफलता प्राप्त करने वाले किसानों को राज्य की ओर से पुरस्कृत तथा प्रतिष्ठित किया जाता है। यह प्रतियोगिता ग्राम सभा के क्षेत्र से लेकर तहसील, जिला, कमिश्नरी और प्रान्तीय स्तर पर होती है। इसमें नकदी के पुरस्कार २५ रु० से लेकर फसल और स्तर के अनुसार ५,००० रु० तक के हैं। ग्राम सभा क्षेत्र

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में अधिकतम उत्पादन करने वालों को प्रतिष्ठा की पगड़ी, अथवा सम्मान के साफे प्रदान किये जाने की व्यवस्था है।

उत्पादन-वृद्धि के रेकर्ड

सरकारी प्रोत्साहन के फलस्वरूप तथा उत्पादन-प्रतियोगिताओं के कारण और उससे भी अधिक अन्नोत्पादन वढ़ाने के महत्व को समझ कर किसानों ने पैदावार बढ़ाने का तन मन से प्रयत्न किया है और उसमें सफलता भी प्राप्त की है। उन्होंने पैदावार के जो शानदार रेकर्ड स्थापित किये हैं, उन पर हम समुचित रूप से गर्व कर सकते हैं। हमारे किसानों के ये गौरवशाली रेकर्ड निम्नलिखित हैं:—

जिन्स	उत्पादक	उत्पादन
गेहूं	श्री जगदीश प्रसाद, मवाना, मेरठ	५८ मन प्रति एकड़
धान	श्री रामसिंह, ननौता, सहारनपुर	६५ " "
मक्का	श्री माधोसिंह, भोंजा, मेरठ	४२ " "
ज्वार	श्री विनायक गणेश, हमीरपुर	२० " "
आलू	श्री माधव कृपालु, मेरठ	७२६ " "
गन्ना	श्री प्रहलाद सिंह, वलीदपुर, मेरठ	१,६४० " "

इससे स्पष्ट है कि यदि सावधानी से खेती की जाय और उत्तम बीज, उपयुक्त खाद, समुचित सिंचाई तथा फसल की सुरक्षा का ध्यान रखा जाय, तो कोई कारण नहीं है कि उत्पादन न बढ़े। इन किसानों ने भी, जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है, अपने खेतों पर कोई जादू की लकड़ी नहीं फेरी थी, उन्होंने परिश्रम के साथ-साथ बुद्धि से भी काम लिया। प्रत्येक किसान ऐसा कर सकता है। परिश्रम तो वह करता ही है, पर जहां उसकी बुद्धि काम न करती हो, वहां वह सरकारी कृषि विभाग से सलाह व सहायता ले सकता है। कृषि विभाग उसकी समुचित सहायता करने और उसे सलाह देने को बाध्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है। लोकप्रिय शासन ने इस विभाग को किसानों के लाभ के लिये ही स्थापित कर रखा है और उस पर लाखों रुपये का व्यय केवल किसानों के हित में ही होता है। जो किसान आवश्यकता पड़ने पर भी इस विभाग की सेवाओं से लाभ नहीं उठाता, वह अपने और अपनी सरकार के साथ, जो स्वयं उसकी ही बनाई हुई है, अन्याय तो करता ही है, साथ ही अपने देश और राष्ट्र के साथ भी घोर विश्वासघात करता है।

बड़ी आराजी आवश्यक नहीं

दुर्भाग्यवश हमारे किसानों तथा अन्य लोगों में भी एक दुर्भावना यह जमी हुई है कि छोटी आराजियां लाभप्रद नहीं हैं और जब तक चकबन्दी नहीं होती तथा आराजियों का क्षेत्रफल नहीं बढ़ता तब तक पैदावार नहीं बढ़ सकती। यह भावना अत्यन्त भ्रमोत्पादक है। इसका अर्थ चकबन्दी का विरोध करना नहीं है। चकबन्दी के अपने अनेक फायदे हैं और उनसे प्रगाढ़-कृषि कर्म तथा अन्नोत्पादन को प्रोत्साहन अवश्य मिलता है, किन्तु यह सोच बैठना कि छोटी जोतों में अधिक पैदावार नहीं हो सकती है बिल्कुल गलत होगा। सच पूछा जाय तो प्रगाढ़-कृषि कार्य हमारे किसानों के वर्तमान साधनों को देखते हुए छोटी जोतों पर ही सुगमता के साथ हो सकता है। चीन में आराजियों अथवा जोतों का आकार भारत की ही भांति छोटा है, किन्तु चीनी किसानों की पैदावार हमारी अपेक्षा कई गुनी है। उसका मुख्य कारण यही है कि चीनी किसान भूमि तैयार करने, बीज छांटने, खाद देने, पानी देने तथा फसल की देख-रेख करने में श्रम और बुद्धि दोनों से काम लेता है। कृषि विशेषज्ञों में यह मत अब जोर पकड़ने लगा है कि जोत का छोटा होना पैदावार बढ़ाने में बाधक नहीं होता और यही सत्य भी है।

सुरक्षित अन्नागारों की व्यवस्था

फसल की सुरक्षा के प्रकरण में बता चुके हैं कि खेतों में फसल को बचाने की कैसी आवश्यकता है और उचित देख-रेख न करने के कारण प्रति वर्ष किस प्रकार करोड़ों मन अन्न, जो वस्तुतः बच जाय तो हमारे सम्पूर्ण अभाव की पूर्ति कर सकता है, कीड़ों, रोगों आदि का शिकार हो कर नष्ट हो जाता है। परन्तु अन्न की रक्षा केवल फसल तक ही सीमित नहीं है। खलिहान से बाजार में आ जाने पर भी अन्न की रक्षा की आवश्यकता है। कीड़ों, घुन, चूहों आदि द्वारा प्रति वर्ष लाखों मन अन्न खत्तियों के अन्दर नष्ट हो जाता है। आगारण (स्टोरेज) की आधुनिक व्यवस्था का अभाव ही इसका मुख्य कारण है। हमारे राज्य में ५,०४२ गैरसरकारी खत्तियां हैं, जिनमें ५६,७३,५६१ मन अन्न रखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त ८,४७४ गैरसरकारी गोदाम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भी हैं, जिनमें १,४४,७४,३१८ मन अन्न समा सकता है। किन्तु ये खत्तियां तथा गोदाम अधिकांशतः पुरानी चाल के हैं और उनमें कीड़ों, रोगों, घुन, चूहों आदि से अन्न बचाने की वे व्यवस्थायें नहीं हैं, जो आधुनिक खत्तियों में होती हैं। सरकार ने इस पर १,३३६ नई खत्तियां तथा एक वृहत् गोदाम अपनी ओर से बनवाये, जिनमें अन्न की सुरक्षा के वे सभी उपकरण विद्यमान हैं, जो वर्तमान-विज्ञान विहित हैं। इस प्रकार राज्य की सभी खत्तियों तथा गोदामों में कुल मिला कर ७,४६,२१७ टन अन्न रखने का स्थान है। ख्याल कीजिये कि हमारे अन्नोत्पादन को देखते हुये हमारा आगारण स्थान कितना कम है। सरकार ने जो वैज्ञानिक साधन-सज्जित निजी खत्तियों और गोदाम बनवाये हैं, वे उसके पूर्ति-विभाग का ही अन्न रख सकने के लिये पर्याप्त नहीं हैं और उसे अपने राशन का अन्न रखने के लिये कुछ गैरसरकारी खत्तियों को किराये पर लेना पड़ा है, परन्तु जिन खत्तियों को उसने लिया है, उन्हें भी उसने आधुनिक अन्न-रक्षा उपकरणों से सुसज्जित कर दिया है। इन व्यवस्थाओं के फलस्वरूप पूर्ति-विभाग के अन्न का विनाश बहुत अधिक घट गया है। परन्तु फिर भी गैरसरकारी खत्तियों और गोदामों में तो इस अभाव में अन्न नष्ट होता ही है। यदि आढ़ती तथा महाजन इस दिशा में समुचित ध्यान दें, तो अन्न का विनाश बहुत कुछ रोका जा सकता है और इस प्रकार बचा हुआ लाखों मन अन्न हमारे अभाव की पूर्ति में महत्वपूर्ण अभिनय कर सकता है। आढ़तियों तथा महाजनों को अपनी खत्तियों को सुधारने में प्रारम्भ में थोड़ा सा व्यय अवश्य करना पड़ेगा, किन्तु अन्ततः वह उनके लिये लाभप्रद ही सिद्ध होगा।

अन्नेतर खाद्य-पदार्थ

अन्न हमारे आहार की सर्वप्रमुख वस्तु है। इसी कारण उसके सम्बन्ध में विचार करने में हमने सर्वाधिक स्थान और समय लिया है। परन्तु अन्य आहार पदार्थों की आवश्यकता तथा उनकी पूर्ति के सम्बन्ध में विचार किये बिना तो यह विषय पूरा न होगा और न इस पुस्तक का उद्देश्य ही पूर्ण हो सकेगा। प्रारम्भ में हमने जहां पर साधारण वयस्क भारतीय के लिये निर्धारित संतुलित आहार का विवरण दिया है, वहां अन्न के पश्चात् शाक-भाजी, फल, घी, दूध, चीनी, गुड़, मांस, मछली, अंडा आदि का भी उल्लेख है। अब हमें देखना है कि हमारे राज्य में इन वस्तुओं की स्थिति कैसी है और शासन ने उनकी पूर्ति के सम्बन्ध में क्या किया है।

शाक-भाजी

शाक-भाजियां हमारे आहार का महत्वपूर्ण अंग हैं। अनेक प्रकार के शाक पौष्टिक तत्वों में अन्न से भी अधिक उपयोगी होते हैं। इनमें विटामिनों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

की भी भरमार होती है। शाक-भाजियों को हम तीन प्रमुख वर्गों में विभाजित कर सकते हैं, यथा

(क) पत्ते वाले शाक, जैसे पालक, मेथी, सोया, चौलाई, कुल्फा, मकोई आदि,

(ख) फल वाले शाक, जैसे टमाटर, बैंगन, परवल, टिन्डा, लौकी, तरोई, सेम, भिन्डी, कद्दू, चचेंड़ा आदि तथा

(ग) जड़ वाले शाक जैसे आलू, शकरकन्द, शलजम, मूली, चुकन्दर, गाजर, लहसुन, प्याज आदि।

गोभी तीनों ही वर्गों में आती है। ग्रामीण क्षेत्रों में तो शाक-भाजी का अभाव नहीं है, वहां तो जंगलों तक में बहुतेरे पत्ते वाले शाक स्वयमेव उत्पन्न होते हैं। कठिनाई शहर वालों की है। पर यदि शहर वाले नागरिक थोड़ा सा परिश्रम करें तो बहुतेरे किस्म का शाक वे अपने घरों में पैदा कर सकते हैं। जिनके पास बंगले हैं, वे तो शाक-भाजी उगाने के लिये काफी स्थान रखते हैं और यदि शृंगारी पुष्पों के स्थान पर वे शाक-भाजी लगायें, तो आज के अभाव के युग में उनके बंगलों की सुन्दरता शाक-भाजियों से ही अधिक मनोरम प्रतीत होगी। यह माना कि वे साधन सम्पन्न हैं और बाजार से कुछ मंहगा शाक भी खरीद सकते ह, किन्तु यदि वे अपने बंगलों में शाक उगा कर अपनी आवश्यकता का एक अंश भी पूरा कर ल, तो बाजार का शाक उनके अन्य लघु सौभाग्यशाली बान्धवों के काम आ सकता है। जिनके पास अधिक जगह नहीं है, ऐसे नागरिक भी आंगन और गमलों में कई तरह के शाक उत्पन्न कर सकते हैं।

नगरों के समीपस्थ स्थित ग्रामों के किसानों को शाक-भाजियों की खेती करना अधिक लाभप्रद है। शाक-भाजियों की खेती यदि ढंग से की जाय, तो वह अन्न से भी अधिक लाभप्रद हो सकती है। शासन ने शाक-भाजियों के सम्बन्ध में अनुसंधान करने के लिये लखनऊ में एक सरकारी-फार्म खोल रखा है, जहां किये गये प्रयोगों से सिद्ध हुआ है कि थोड़े से परिश्रम और सामान्य देख-रेख तथा सावधानी बरतने से प्रति एकड़ लगभग ८–९ सौ रुपये का शाक पैदा किया जा सकता है। शाकों के उत्तम बीजों तथा उनके खेतों में दी जाने वाली खाद,पानी आदि के सम्बन्ध में किसान कृषि-विभाग से भी पूछ-तांछ कर सकते हैं। शहरों के समीप के गांवों के लिये शाक-भाजी की खेती आर्थिक उन्नति का एक अत्यन्त शुभ व्यवसाय है।

आलू और शकरकन्द

आलू और शकरकन्द तो हमारी दिव्य भाजियां हैं। उनमें पौष्टिक तत्व अत्यधिक मात्रा में होता है। शकरकन्द की तो विशेषज्ञों ने खास तौर पर सिफारिश की है, यहां तक कि उसके आटे को गेहूं के आटे में मिलाकर खाना भी अत्यन्त उपयोगी बताया है। शकरकन्द हमारे देश में अनेक प्रकार से,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुख्यतः तरकारी के रूप में अथवा दूध के साथ खाया जाता है। वह मीठा सुस्वाद तथा पुष्टिकारक होता है। कृषि विभाग ने पिछले दिनों ५ हजार एकड़ क्षेत्र में शकरकन्द की प्रगाढ़-कृषि कराने का लक्ष्य बनाया था, परन्तु उसका लक्ष्य पूरा ही नहीं बल्कि दूना हो गया और प्रायः १० हजार एकड़ में शकरकन्द बोया गया।

आलू तो एक प्रकार से हमारी राष्ट्रीय भाजी है। आलू कितने प्रकार से बनाया और खाया जाता है, इसका पूरा विवरण सम्भवतः कोई पाकशास्त्री भी नहीं दे सकता। हमारे राज्य में आलू की खेती विस्तृत पैमाने पर होती है। लगभग २ लाख एकड़ भूमि में आलू बोया जाता है और उसका औसत उत्पादन १५० मन प्रति एकड़ है। कृषि-विभाग ने आलू की खेती के सुधार के लिये अनेकानेक प्रयत्न किये हैं। आलू के उत्तम बीजों के वितरण तथा आलू के खेतों में दी जाने वाली खाद, पानी तथा आलू की फसल की सुरक्षा के सम्बन्ध में उसने किसानों को महत्वपूर्ण सहायता दी है। उसने आलू की खेती करने के आधुनिक ढंग का भी व्यापक प्रचार किया है और उस पर अमल करके मेरठ के एक किसान ने १९५० ई० में ६७९ मन प्रति एकड़ आलू पैदा किया। १९५१ ई० में तो यह रेकर्ड प्रति एकड़ ७२६ मन के उत्पादन से टूट गया है। इस प्रकार देखा जाय तो हमारे किसान थोड़े से परिश्रम तथा बुद्धि का उपयोग कर ४-५ सौ मन आलू प्रति एकड़ आसानी से पैदा कर सकते हैं।

शाक-भाजियों की सुरक्षा

हरे शाक अर्थात् पत्ते वाले तथा फल वाले शाक प्रायः ताजे ही खाये जाते हैं, अतएव उनकी सुरक्षा का प्रश्न तो तभी तक है जब तक वे खेत में हैं, क्योंकि खेत से कटने के बाद तथा मनुष्य के आहार का अंग बनने तक के बीच की अवधि अधिक नहीं होती। खेतों में शाकों की सुरक्षा के विषय में कृषि-विभाग ने किसानों के लिये विस्तृत परामर्श की व्यवस्था की है। परन्तु जड़ वाली भाजियों को तो महीनों रखा जाता है और आगारण-काल (स्टोरेज पीरियड) में भी उनकी सुरक्षा की आवश्यकता है। आलू भी महीनों रखा जाता है। उसके आगारण की शासन ने उपयुक्त व्यवस्था की है और उसका निर्जलीकरण (डिहाइड्रेशन) करके उसे अधिक काल तक सुरक्षित रखने तथा सड़ने से बचाने की एक नई विधि भी जारी की है।

फल

फलों का हमारे दैनिक आहार में विशेष महत्व है। उनमें विटामिन तथा अन्य पौष्टिक तत्व अत्यधिक मात्रा में होते हैं। उनकी कैलरी-शक्ति भी अद्वितीय होती है। उनका रस अन्न के पाचन में भी बड़ी सहायता करता है। स्वास्थ्य तथा पुष्टता के लिये फल खाना अत्यावश्यक है। परन्तु इन दिनों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तो फल हमारे लिये विलास अथवा पथ्य की ही वस्तु बन कर रह गये हैं। साधारण आदमी अपने दैनिक आहार में फलों का समावेश नहीं कर सकता और इसका कारण है फलों की दुर्लभता और इसी कारण उनका अनाप-शनाप बढ़ा हुआ मूल्य, जो जनसाधारण की क्रय-शक्ति से बाहर है। फलों को यदि साधारण नागरिक की क्रय-शक्ति के भीतर लाना है, तो हमें फलों का उत्पादन बढ़ाना पड़ेगा।

औद्यानीकरण

औद्यानीकरण अथवा बागवानी ही वह उपाय है, जिससे हम फलों का उत्पादन बढ़ा सकते हैं। सौभाग्यवश हमारे राज्य में ऐसी भूमि अथवा ऐसी जलवायु का अभाव नहीं है, जो विभिन्न फलों के उत्पादन के अनुकूल होती है। परन्तु हमारे लकड़ी के लालच ने हमें इस अत्यन्त उपयोगी आहार से वंचित कर दिया है।

कहते हैं कि पुराने जमाने में फलों की खेती नहीं होती थी, प्रकृति स्वयं ही फल प्रदान किया करती है। यह बात आज भी सत्य है, यदि मनुष्य ने प्रकृति के इस दान को ठुकरा न दिया होता। प्राचीन युग में भी प्रकृति आकाश से फल नहीं टपकाती थी। धरती पर ही फलों के वृक्ष उगते थे। परन्तु उस समय कोई जंगल नहीं काटता था। जहां बस्तियां थीं वहां बस्तियां थीं और आस-पास खेत थे, शेष में जंगल। परन्तु इंधन तथा लकड़ी के लोभ में हमने जंगल के जंगल काट डाले, जिसका फल यह हुआ है कि हमारे पौने ७ करोड़ एकड़ के सम्पूर्ण क्षेत्रफल के केवल १२ प्रतिशत अर्थात् लगभग ७८ लाख एकड़ में जंगल है और उसका भी अधिकांश अर्थात् ४६ लाख एकड़ कुमायूं के पहाड़ी इलाके में है और शेष या तो तराई में अथवा राज्य के दक्षिणी भागों के पठारी और पहाड़ी क्षेत्रों में, बीच का सारा मैदान जंगलों से साफ है।

भूमि-क्षरण (मिट्टी का कटाव) सम्बन्धी प्रकरण में तथा अन्यत्र भी बता चुके हैं कि समाज के जीवन के लिये तथा भूमि की सुरक्षा के निमित्त वनों का क्या महत्व है और वनों के अभाव में भूमि किस प्रकार रेगिस्तान में बदल जाती है। विशेषज्ञों का मत है कि प्रत्येक देश में कम से कम २५ प्रतिशत भूमि पर वन, वृक्ष-कुंज, उद्यान आदि होने चाहिये, पर हमने जंगल काट-काट कर उसका आधा भी नहीं रखा है। अपने मैदान को तो हमने सर्वथा ही वनशून्य कर दिया है। इसका जो कुप्रभाव हमारी कृषि तथा हमारे अन्नोत्पादन पर पड़ रहा है, उसका उल्लेख पहिले ही कर चुके हैं। हमारे फलोत्पादन पर भी उसका व्यापक प्रभाव पड़ रहा है। अपने मैदानी इलाके की इस वन-शून्यता को हम बाग लगाकर समाप्त कर सकते हैं। इससे हमें दो लाभ होंगे,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक तो भूमि की जल सोखने की शक्ति बढ़ेगी, वर्षा अधिक होगी और फलस्वरूप कृषि की उन्नति होगी तथा दूसरे हमें अपने पूरक आहार के रूप में अधिकाधिक मात्रा में फल उपलब्ध हो सकेंगे।

औद्यानीकरण को राजकीय प्रोत्साहन

जैसा कि बता चुके हैं कि हमारे राज्य की मिट्टी तथा जलवायु विभिन्न प्रकृति के फलों के पूर्णतः अनुकूल हैं और प्रायः सभी ज्ञात किस्मों के फल यहां पैदा किये जाते हैं, पर लकड़ी के लालच ने हमें जंगल काटते रहने को विवश किया और अब हमारे राज्य के सभी बागों का सम्पूर्ण क्षेत्रफल ४ लाख एकड़ से भी बहुत कम रह गया है। फलों की निरन्तर कमी पड़ने का यही एक विशेष कारण है। अतएव अधिकाधिक संख्या में बाग लगाना हमारे लिये अत्यावश्यक है। शासन ने इस आवश्यकता के महत्व को समझा है और उसने कृषि विभाग के अन्तर्गत औद्यानीकरण-शाखा (हार्टिकल्चर-सेक्शन) के नाम से एक पृथक् उप-विभाग के संघटन का प्रसार किया है। उसने फल-वृक्षों के बीजारोपण तथा उनकी सुरक्षा के सम्बन्ध में बागवानों को यथेष्ट सहायता दी है। फलों के वृक्षों को कीड़ों और रोगों से बचाने की भी उसने समुचित व्यवस्था की है तथा फलों के बाजार में आने पर भी उनकी सुरक्षा के लिये शीत-आगारण (कोल्ड-स्टोरेज) आदि की व्यवस्था भी सरकार ने की है। औद्यानीकरण-शाखा ने लोगों को नये बाग लगाने तथा पुराने बागों में नये वृक्ष लगा कर उन्हें पुनर्जीवित करने को भी प्रोत्साहित किया है और उसके प्रयत्नों के फलस्वरूप राज्य के औद्यानीकरण में जो उन्नति हुई है, वह निम्नलिखित नक्शे से स्पष्ट है:—

(एकड़ों में)

	नये बागों का रक़बा	पुनर्जीवित बागों का रक़बा	योग
१९४७–४८	३,८६३	४,४५७	८,३२०
१९४८–४९	९,३०७	८,३७९	१७,६८६
१९४९–५०	१३,५८९	११,६१०	२५,१९९
१९५०–५१	१६,०७०	६,३१६	२२,३८६
महायोग	४२,८२६	३०,७६२	७३,५९१

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गुड़ और शक्कर

गुड़ और शक्कर हमारे आहार के प्रमुख अंग हैं और सन्तुलित आहार व्यवस्था के सम्बन्ध में जिन तीन विशेषज्ञ-समितियों की रिपोर्ट का उल्लेख प्रारम्भ में कर चुके हैं, उन्होंने भी सिफारिश की है कि प्रत्येक वयस्क को प्रतिदिन कम से कम एक छटांक गुड़ अथवा शक्कर अवश्य खाना चाहिये। यह पदार्थ न केवल पौष्टिक होते हैं, बल्कि पाचन-शक्ति भी बढ़ाते हैं और बलवर्द्धक कहे गये हैं। आधुनिक ढंग के शक्कर के कारखानों का उद्योग बहुत पुराना नहीं है। केवल आधी शताब्दी पूर्व ही इस देश में एक भी शक्कर मिल न थी, किन्तु गुड़ और खांड का उद्योग इस देश में अत्यन्त प्राचीन काल से चला आता है। आधुनिक ढंग की शक्कर मिलें इस देश में सर्वप्रथम १९०३ ई० में खुली थीं, पर वे ३० वर्ष तक कोई उन्नति न कर सकीं, क्योंकि जावा की शक्कर उनसे सस्ती पड़ती थी और उसकी प्रतियोगिता में भारतीय चीनी उद्योग नहीं पनप पा रहा था। कांग्रेस तथा अन्य राष्ट्रवादियों ने इस सम्बन्ध में प्रबल आन्दोलन किया और १९३२ ई० में तत्कालीन ब्रिटिश शासन को जनमत के समक्ष झुककर इस स्वदेशी उद्योग के लिये संरक्षणों की घोषणा करनी पड़ी। तब से भारतीय शक्कर उद्योग निरन्तर उन्नति कर रहा है और उसका वार्षिक शक्कर उत्पादन १०-११ लाख टन के बीच है। वस्तुतः भारत संसार का सबसे बड़ा गन्ना-उत्पादक देश है और शक्कर के निर्माण में उसका स्थान दूसरा है, पहिला क्यूबा का है। विश्व के समस्त शक्कर-उत्पादन का २६ प्रतिशत भारत में निर्मित होता है।

गुड़ के उत्पादन में उत्तर प्रदेश की स्थिति

भारत में गन्ने की खेती जितनी भूमि पर होती है, उसकी आधी से अधिक उत्तर प्रदेश में है। इस राज्य में शक्कर के ७८ कारखाने हैं, पर वे राज्य के सम्पूर्ण गन्ना-उत्पादन के पंचमांश से अधिक का उपयोग नहीं कर पाते। दूसरा पंचमांश खांडसारी बनाने, रस चूसने तथा बीज आदि के काम आता है, शेष ६० प्रतिशत गन्ना गुड़ बनाने में प्रयुक्त होता है। हमारे राज्य में प्रायः ६ करोड़ मन गुड़ बनता है, रुपयों में जिसका मूल्य ७२ करोड़ हुआ। प्रायः एक करोड़ मन गुड़ राज्य से बाहर स्थित अन्य राज्यों को निर्यात किया जाता है, जिसके एवज में हमें वहां से १५ करोड़ रुपये की आमदनी होती है। राज्य में ३ लाख के लगभग कोल्हू हैं जो गन्ने के मौसम में १२ लाख ग्रामीणों को अतिरिक्त काम देते हैं। बहुतेरे लोग, विशेषकर ग्रामीण, गुड़ को शक्कर से अधिक महत्व देते हैं और वैद्य लोग भी गुड़ को शक्कर से अधिक पौष्टिक बताते हैं। इसी कारण ग्रामीण क्षेत्रों में शक्कर के बजाय गुड़ का ही अधिक उपयोग होता है। यों तो गुड़ देश के अन्य भागों में भी बनाया जाता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हैं, परन्तु उत्तर प्रदेश में उसका उत्पादन तथा उपभोग कुछ विशेषता के साथ होता है और गुड़ के उत्पादन तथा प्रति व्यक्ति उसके उपभोग की निम्न-लिखित तालिका को देखा जाय, तो विदित होगा कि यदि केवल गुड़ को ही दृष्टि-गत रखा जाय, तो इस राज्य के निवासियों का गुड़ अथवा शक्कर का एक छटाक दैनिक आहार का कोटा केवल गुड़ से ही पूरा हो जाता है, शक्कर तो घाते में है।

राज्य		गुड़ का उत्पादन	गुड़ का प्रति व्यक्ति उपभोग
उत्तर प्रदेश	..	६ करोड़ मन	३६ सेर
पंजाब	..	७० लाख मन	१३॥ सेर
बंगाल	..	१। करोड़ मन	१०॥ सेर
बम्बई	..	६५ लाख मन	९॥ सेर
बिहार-उड़ीसा	..	८० लाख मन	७ सेर
मध्य प्रदेश	..	५ लाख मन	५ सेर
मद्रास	..	६४ लाख मन	४॥ सेर

गुड़-विकास की योजनाएं

गुड़ बनाने का उद्योग कोई बड़ा वैज्ञानिक उद्योग नहीं है। उसकी एक सरल विधि है। गन्ने से रस निकाल कर उसे साफ किया जाता है और उसको उबाल कर गुड़ बनाया जाता है। किन्तु जिस ढंग से हमारे ग्रामीण यह काम करते हैं, वह पुराना और रूढ़िवादी है और उसमें वस्तु का अपव्यय अत्यधिक होता है। उनके कोल्हू पुरानी चाल के हैं और पूरा रस नहीं निकाल पाते। वर्तमान शासन ने गुड़ को एक कुटीरोद्योग मान कर उसको कुटीरोद्योग-विभाग के अधीन किया और उसके विकास की समुचित योजनायें बनाई। एक तो नये किस्म के कोल्हू को प्रचारित किया गया। यह कोल्हू ७० प्रतिशत रस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निकाल लेता है, जब कि पुरानी किस्म के कोल्हू ५०-५५ प्रतिशत से अधिक रस नहीं निकाल पाते। इसके अतिरिक्त गन्ने का रस साफ करने के लिये उससे सस्ते और सुलभ शोधक तत्वों का अन्वेषण करा के उन्हें गुड़-निर्माताओं में प्रचारित किया। इन शोधकों ने गुड़ का रंग साफ करने और उसे सुस्वादु बनाने में बड़ी सहायता दी है। नये ढंग की भट्ठियों की भी व्यवस्था की गई, जिनमें ईंधन कम खर्च होता है और कम अथवा अधिक ताप पहुंचने से गुड़ जलने या खराब नहीं होने पाता। इसके अतिरिक्त गुड़ के आगारण और विक्रय की भी समुचित व्यवस्था की गई।

गुड़-विकास के प्रति शासन की प्रथम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण देन तो वह थी, जब अप्रैल, १९४६ ई० में पदारूढ़ होते ही उसने पिछले गवर्नरी शासन के उस आदेश को रद्द कर दिया, जिसमें कुछ शक्कर-मिलों के गन्ना-क्षेत्र में गुड़-निर्माण पर रोक थी तथा उस क्षेत्र का गन्ना भी क्षेत्र से बाहर भेजना वर्जित था। गवर्नरी शासन ने यह प्रतिबन्ध पूंजीपति मिल-मालिकों के हित में लगाये थे, जिन्हें अपनी मिलों के लिये गन्ना पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलता था। गवर्नरी शासन ने गन्ने का मूल्य साढ़े चौदह आना प्रति मन बांध रखा था और गुड़ में अधिक लाभ होने के कारण किसान अपना गन्ना मिलों को न देकर उसका गुड़ बनाना चाहते थे। जनप्रिय शासन ने इसे अनुचित समझ कर गन्ने की बिक्री पर प्रतिबन्ध तो हटा ही दिया, साथ ही मिलों के लिये गन्ने का मूल्य भी साढ़े चौदह आना से बढ़ाकर १ रु० ४ आ० प्रति मन निर्धारित कर दिया। इस प्रकार गन्ना-उत्पादकों को संतोष हुआ, साथ ही मिलों को भी गन्ने की कमी न रही। मिल-मालिकों को अनुचित हानि न होने पाये, इस दृष्टि से भारत सरकार ने शक्कर का मिल-रेट १६ रु० १० आ० से बढ़ाकर २० रु० १४ आ० प्रति मन कर दिया।

शक्कर की स्थिति

७ दिसम्बर, १९४७ को शक्कर का विनियन्त्रण हो गया, परन्तु उपभोक्ताओं को असुविधा न होने पाये, इस उद्देश्य से उत्तर प्रदेश सरकार ने, जिसके राज्य में देश का आधे से अधिक शक्कर उत्पादन होता है, इंडियन शुगर सिंडीकेट से एक समझौता किया। यह सिंडीकेट उत्तर प्रदेश और बिहार तथा कुछ अन्यत्र के शक्कर-निर्माताओं का संघ है। इस समझौते के अनुसार सिन्डीकेट ने आश्वासन दिया कि शक्कर का मिल रेट ३५ रु० ७ आ० प्रति मन से अधिक न बढ़ने पायेगा और गन्ना उत्पादकों को उस मौसम के गन्ने के लिये कम से कम २ रु० प्रति मन की दर से मूल्य दिया जायगा। इस आश्वासन के प्रकाश में सरकार ने गन्ने का कोई न्यूनतम मूल्य उस वर्ष नियत नहीं किया, पर मूल्य-वृद्धि को देखते हुये गन्ना-कर की दर एक आना से बढ़ा कर तीन आना प्रति मन कर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दिया गया और गन्ना-संघों का कमीशन भी एक पैसा से बढ़ाकर ३ पैसा प्रति-मन कर दिया गया। इस कर-वृद्धि का प्रभाव गन्ना उत्पादक पर नहीं पड़ा, बल्कि प्रकारान्तर से यह भार चीनी मीलों पर ही पड़ा, क्योंकि किसानों को अपने गन्ने का अधिक मूल्य भी तो मिलने लगा, जो पिछले वर्ष के मूल्य से कहीं अधिक था।

परन्तु इससे अगले वर्ष अर्थात् १९४८-४९ में यह व्यवस्था न चली और सरकार ने गन्ने का मूल्य १ रु० १० आ० प्रति मन पर निर्धारित कर दिया, जिसमें से १ रु० ८ आ० मन तो किसानों को नकद मिला और दो आना मन उनके नाम से प्रादेशिक सहकारिता बैंक में जमा कर दिया गया। इसका उद्देश्य मुद्रा-प्रसार रोकना तथा किसान के पास निश्चित बचत की जमा की व्यवस्था करना था। इससे किसानों को समुचित आर्थिक लाभ हुआ। उधर गन्ना की कीमत घटने के कारण शक्कर का मिल रेट भी घटाकर २८ रु० ८ आ० प्रति मन निर्धारित कर दिया गया।

शक्कर की दुर्लभता और उसके निराकरण के उपाय

१९४८ ई० में यातायात की कठिनाइयों के कारण समय-समय पर देश के विभिन्न भागों में शक्कर के अभाव की घटनायें हुईं और वहां स्थानिक तथा अस्थायी रूप से शक्कर के दाम भी बढ़ने लगे। अभाव दूर करने, वितरण का कार्य सुचारुरूप से चलते रहने तथा मूल्य वृद्धि रोकने के उद्देश्य से उपभोक्ता संघों के लिये शक्कर के अविलम्ब तथा निरन्तर यातायात की समुचित व्यवस्था की गई और सरकार ने सिन्डीकेट से अनुरोध किया कि वह यातायात की सुविधाओं का अधिकाधिक उपयोग करे। इसके फलस्वरूप जून, १९४९ ई० तक इतनी शक्कर वितरित हो गई कि उसका भाव सिन्डीकेट द्वारा निर्धारित मूल्य से भी कम हो गया। जुलाई में शक्कर का भाव पुनः चढ़ने तथा अगस्त के प्रथम पखवारे में तो वह सिन्डीकेट के भाव से कहीं ऊपर पहुंच गया। फुटकर का भाव तो आशंकाजनक था। विक्रेताओं ने शक्कर दबा ली थी। अतः सिन्डी-केट को आदेश दिया गया कि वह अपने विक्रय की गति मन्द कर दे और अपना स्टाक इस भांति निकाले कि नये मौसम की शक्कर आने तक वर्तमान स्टाक चल जाय। इससे जनता को शक्कर मिलती रहती और कहीं अचानक अभाव पैदा होने की नौबत न आती। परन्तु कुछ कारखानों ने निर्दिष्ट मात्रा से अधिक शक्कर बेच डाली। सरकार ने देखा कि इस प्रकार यदि शक्कर कार-खानों से, जहां उसका नियंत्रण किया जा सकता था, निकल कर व्यापारियों के हाथ पहुंच गई, तो उसको नियंत्रित कर सकना अथवा उसे वितरण के लिये हस्तगत कर सकना प्रायः असम्भव-सा ही हो जायगा। अतएव २५ अगस्त को उसने एक आदेश द्वारा मिलों में स्थित सम्पूर्ण चीनी पर अधिकार कर लिया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रौर इस प्रकार एक नियमित श्रौर नियोजित विधि से उसके विक्रय की व्यवस्था करने का प्रबन्ध किया।

इससे पूर्व सरकार ने उन मिलों को, जिनके पास पर्याप्त शक्कर थी, आदेश दिया था कि वह शक्कर की उचित मात्रा उत्तर प्रदेश सहकारिता विकास श्रौर विक्रय संघ को बेचें, जो उपभोक्ता सहकारिता समितियों के द्वारा बड़े-बड़े नगरों में शक्कर के फुटकर विक्रय की व्यवस्था करे। इस व्यवस्था ने समुचित परिणाम दिखाया श्रौर इन नगरों में शक्कर का भाव बहुत अधिक मात्रा में गिर गया।

शक्कर के अतिरिक्त उत्पादन का खुला विक्रय

भारत सरकार ने शक्कर-मिलों को एक विशेष सुविधा दी है। उनके लिये शक्कर के उत्पादन की न्यूनतम मात्रा बांध दी गई है। उस मात्रा तक तो वे नियंत्रण (वितरण सम्बन्धी) में हैं, परन्तु उस मात्रा से अधिक उत्पादन करने पर उन्हें अतिरिक्त उत्पादन का एक अंश खुले बाजार बेच लेने की स्वतंत्रता है। यह अतिरिक्त उत्पादन भी वे एक साथ नहीं बेच सकते। वे पहिले उसका ५० प्रतिशत तक बेच सकते हैं। इसके उपरान्त जब विक्रय होता है, तो श्रौसत अतिरिक्त उत्पादन का ८ प्रतिशत सुरक्षित रूप से अलग रख लिया जाता है— आकस्मिक आवश्यकताश्रों के लिये, दुबारा विक्रय होने पर १५ प्रतिशत रख लिया जाता है। इस प्रकार आकस्मिक आवश्यकताश्रों की पूर्ति की व्यवस्था भी रहती है श्रौर खुले बाजार के लिये शक्कर की सप्लाई भी हो जाती है।

उत्तर प्रदेश सरकार उन परिस्थितियों पर विचार कर रही है, जिनके अन्तर्गत मिलों को यह सुविधा दी गई है। वह इस बात के लिये सचेष्ट ह कि शक्कर का मूल्य उचित स्तर पर रखने के लिये शक्कर के स्टाक की नियमित मात्रा निरन्तर निकलती रहे श्रौर इसके लिये आवश्यक योजनाएं बनाई जा रही हैं। इस बीच राज्य की शक्कर मिलों से सम्बन्धित शक्कर मिल नियन्त्रण अधिनियम तथा उसके अन्तर्गत बने हुये नियमों में संशोधन करने की व्यवस्था हो रही है।

गन्ना-विकास का कार्य

किन्तु ये व्यवस्थायें तो उपलब्ध शक्कर के वितरण से सम्बन्धित हैं। शक्कर के उत्पादन की आवश्यकता भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। अनेक बार यह शिकायत सुनी गई कि अमुक मिल को पर्याप्त मात्रा में गन्ना नहीं मिल रहा है श्रौर वह बेकार है। कभी-कभी कुछ उद्योगपति ऐसे क्षेत्रों की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मिलों को गन्ना-बहुल्य क्षेत्रों में उठा ले जाने तक को प्रस्तुत पाये गये। अतः मिलों के समक्ष गन्ने के अभाव का प्रश्न भी उठ खड़ा होता है। गन्ना की खेती इस राज्य की वाणिज्य कृषि में सर्वोच्च स्थान ही नहीं रखती, यहां के ग्रामीणों के एक बड़े अंग की आर्थिक व्यवस्था पर भी उसका व्यापक प्रभाव पड़ता है। गन्ने के विकास के निमित्त शासन ने गन्ना-उत्पादक क्षेत्रों में गन्ना-विकास तथा क्रय-विक्रय संघ स्थापित किये, जिनका उद्देश्य सुधरे किस्म के गन्ने के बीजों का किसानों में प्रचार करना, गन्ने की प्रति एकड़ उपज बढ़ाने के लिये उसकी कृषि के सुधरे हुये तरीके का प्रचार करना, गन्ने के रोगों की रोक-थाम का प्रबन्ध करना, अपने सदस्यों को उनके गन्ने की उचित कीमत दिलाना तथा उसकी ठीक-ठीक तौल कराने की व्यवस्था करना आदि है। प्रायः प्रत्येक मिल-क्षेत्र में एक गन्ना-संघ अवश्य होता है। राज्य में इस समय लगभग १०४ गन्ना संघ हैं। उनकी सदस्य संख्या भी लगभग ११ लाख है। मिलों द्वारा पेरे जाने वाले गन्ने की ६० प्रतिशत सप्लाई इन संघों की ही मार्फत होती हैं। १६४६-५० में इन संघों ने १६ करोड़ ३२ लाख रुपये के मूल्य का लगभग १२ करोड़ मन गन्ना मिलों को सप्लाई किया। साथ ही उन्होंने गन्ने के २८ लाख मन सुधरे हुये बीज (जिसके लिये सरकार ने अपने गन्ना-अन्वेषण केन्द्र तथा पौदालय खोल रखे हैं), ७ लाख मन रासायनिक खाद तथा पर्याप्त संख्या में आधुनिक कृषि-औजारों का वितरण किया। यह उल्लेखनीय है कि सरकारी प्रोत्साहन तथा इन गन्ना-संघों के प्रयत्नों के फलस्वरूप उनके सम्पूर्ण क्षेत्र में केवल सुधरे किस्म के गन्ने की ही काश्त होती है।

गन्ना-संघों की सफलता

गन्ना-विकास तथा क्रय-विक्रय के अतिरिक्त इन संघों ने गन्ना-क्षेत्रों के सुधार में भी बड़ा योग दिया है। उन्होंने साहकारिक तरीके पर मिल-जुल कर कुओं की मरम्मत तथा नये कुओं का निर्माण किया, सिंचाई की समुचित व्यवस्था की तथा देहातों से मिल तक गन्ना ले जाने के लिये सड़कें और सेतु बनाये। १६४६-५० में उन्होंने १,२०० नये कुयें बनाये और २७३ कुओं की मरम्मत की तथा नहरों की २५ मील लम्बी नालियों की सफाई कराई। इन्हीं संघों ने २३ मील पक्की तथा २६८ मील कच्ची सड़कों का निर्माण किया, ३६५ मील कच्ची सड़कों की मरम्मत की, २७० नई पुलियां बनाई और बहुतेरी पुरानी पुलियों की मरम्मत की। अब इन संघों का एक प्रादेशिक महासंघ बन गया है, जिसका उद्देश्य संघों के सामान्य हितों को बढ़ाना, संघों तथा मिलों के पारस्परिक सम्बन्धों को मैत्रीपूर्ण बनाना तथा सदस्य-संघों की प्रत्येक सम्भव सहायता करना है। इस प्रादेशिक संघ ने गन्ना-क्षेत्रों को रासायनिक खाद पहुंचाने के लिये इम्पीरियल केमिकल इण्डस्ट्रीज (आई० सी० आई०) की एजेन्सी भी ले ली है। इन विकास-कार्यों का उद्देश्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गन्ने की प्रति एकड़ उपज बढ़ा कर गन्ने का अधिकतम उत्पादन करना है, ताकि शक्कर की बढ़ती हुई मंहगाई को कम किया जा सके।

दूध

दूध की समस्या जितनी गहन शहरों में है, वैसी देहातों में नहीं। यों तो भारत का पशुधन संसार में सबसे अधिक है और विश्व की सम्पूर्ण पालतू पशु-संख्या का एक-चौथाई केवल इसी देश में है, परन्तु इसी देश का दुग्धोत्पादन भी विश्व में सबसे कम है। इस देश में दुधारू पशुओं की संख्या अन्य देशों की तुलना में सर्वाधिक है। भारत, यूरोप (रूस को छोड़ कर) की सम्पूर्ण दुधारू पशु-संख्या से ३२ प्रतिशत अधिक पशुओं का स्वामी होने का गर्व कर सकता है, परन्तु उसका दुग्धोत्पादन यूरोप का पंचमांश भी नहीं है। वस्तुतः भारतीय पशुओं की दुग्धदायिनी शक्ति अत्यल्प है। भारतीय गाय का औसत वार्षिक दुग्धोत्पादन ५२५ पौन्ड (लगभग पौने ७ मन) और भैंस का १,२७० पौन्ड (लगभग पौने १६ मन) है। इसके विपरीत इंगलैंड में यह औसत ५,४०० पौन्ड (लगभग साढ़े ६७ मन) है। परन्तु इसमें भी कोई संदेह नहीं कि भारतीय गाय-भैंसों का दूध गुण में सर्वोत्कृष्ट होता है। भारतीय गाय के दूध में मक्खन का अंश ५ प्रतिशत है और भैंस के दूध में ८ प्रतिशत होता है, जब कि औसत ब्रिटिश गाय के दूध में मक्खन का अंश साढ़े ३ प्रतिशत से अधिक नहीं होता। भारत से प्रतिवर्ष साढ़े ७ अरब रुपये से अधिक के मूल्य का ४८,१६,००,००० मन दूध होता है, जिसका केवल ३६ प्रतिशत पीने के काम आता है, शेष को औट कर उसका घी, खोया आदि बना लिया जाता है।

उत्तर प्रदेश की दुग्ध-स्थिति

उत्तर प्रदेश की दुग्ध-स्थिति शेष भारत से भिन्न नहीं है। इस राज्य में १ करोड़ ३७ हजार दुधारू पशु (५४ लाख ९३ हजार गायें और ४५ लाख ४४ हजार भैंसें) हैं। इस राज्य की गायें औसतन ६२५ पौन्ड (लगभग पौने ८ मन) तथा भैंसें १,२४० पौन्ड (लगभग साढ़े १५ मन) दूध वर्ष भर में देती हैं। राज्य में दूध की पैदावार लगभग ११,१९,२६,००० मन वार्षिक की है। १६ रु० प्रति मन के औसत मूल्य से उसकी कीमत प्रायः पौने २ अरब रुपया होती ह। इसमें से ४० प्रतिशत दूध पीने के काम में तथा ३२ प्रतिशत घी बनाने में एवं शेष २८ प्रतिशत खोया, मक्खन, मलाई, मिठाई आदि के काम आता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उपर्युक्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि हमारे पशुओं का दुग्धोत्पादन अत्यन्त हीनावस्था में है और इसका सर्वप्रमुख कारण यही है कि गाय की पूजा का दम्भ करते हुये भी हम उसकी समुचित तो क्या आवश्यक सेवा भी नहीं करते। हमारे अधिकांश पशु हीन नस्ल के हैं और उनका दुग्धोत्पादन अत्यन्त न्यून है। विशेषज्ञों का कहना है कि यदि हम अपने पशुओं के आहार तथा उनकी देख-रेख का समुचित प्रबन्ध करें, तो वर्तमान पशुओं से ही हम २० से ४० प्रतिशत तक अधिक दूध निकाल सकते हैं। कम उत्पादन होते हुए भी हम अपना काम मजे में चला सकेंगे, क्योंकि भारतीय पशुओं के दूध में पौष्टिक तत्व अधिक मात्रा में होते हैं। भारत सरकार के पौष्टिक-तत्व विशेषज्ञ डा० आकारायड ने लिखा है, "भारतीय गाय के दूध में यूरोपियन गाय के दूध से २५ से ५० प्रतिशत अधिक चर्बी तत्व रहता है, भैंस के दूध में तो वह दूना तक होता है। भारतीय दूध में चर्बी तत्व की अधिक मात्रा होने के कारण ही परिमाण में कम होने पर भी उसका गुणकारी प्रभाव अधिक होता है।"

नस्ल-सुधार के प्रयत्न

पशुओं से अधिक दूध लेने के लिये उनके नस्ल-सुधार पर ध्यान देना आवश्यक है। ऊपर बता चुके हैं कि हमारी गायों का औसत दूध उत्पादन पौने ७ मन वार्षिक का है। इसके विपरीत यूरोपियन गायें इससे दसगुना अधिक दूध देती हैं। परन्तु अधिक दूध देने वाली गायें हमारे यहां न हों, ऐसी बात नहीं है। साहीवाल गायें ही ६,६०० से ७,७४४ पौन्ड (८५.५ से ९६.८ मन) तक दूध देती हैं। गायों की और भैंसों की भी अनेक नस्लें हैं, जिनकी दूध देने की शक्ति साधारण गायों से बहुत अधिक है। पर अच्छी नस्लों की गायों की संख्या कम है। फिर भी उत्तम वंश के सांडों से निम्नकोटि की गायों और भैंसों का योग कराया जाय, तो उत्तम गाय और भैंस मिल सकती हैं। उत्तर प्रदेश सरकार ने इस सम्बन्ध में व्यापक व्यवस्था की है। उसके पशुपालन विभाग ने ४,९८० सांड तथा १,०९४ भैंसा-साड़ देहातों में वितरित कर रखे हैं। इसके अतिरिक्त कोई भी ग्रामीण संस्था अथवा पंचायत केवल ३० रु० देकर विभाग से उत्तम सांड़ ले सकती है। पशु-प्रजनन केन्द्रों की विस्तृत रूप से स्थापना की गई है, जहां पशुओं की नस्ल सुधारने का व्यापक प्रबन्ध है। राज्य के एक दर्जन यांत्रिक कृषि फार्मों पर भी ऐसी ही व्यवस्था है। आधुनिक तरीके पर दूध का उत्पादन करने के लिये सरकार ने अलीगढ़, नगला, मथुरा, हस्तिनापुर, लखनऊ आदि में उत्कृष्ट राजकीय दुग्धशालायें स्थापित की हैं, जहां अर्वाचीन ढंग से पशु-पालन एवं यांत्रिक विधि से दुग्धोत्पादन होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दूध के वितरण की व्यवस्था

जैसा कि पिछले खंड में बता चुके हैं, दूध की समस्या जितनी गहन शहरों में है, वैसी देहातों में नहीं। देहातों में पशु हीन नस्ल के हैं, पर अपनी अधिक संख्या के कारण वे पर्याप्त दूध उत्पन्न करते हैं, जिसमें से अधिकांश का उपयोग ग्रामीण स्वयं नहीं कर पाते। जो ग्रामीण क्षेत्र शहरों से दूर हैं, वहां अपना अतिरिक्त दूध शहरों में ले जाकर बेच सकना भी कठिन है, अतएव इस दूध को औट कर वे या तो इसका खोया बना डालते हैं अथवा घी निकाल लेते हैं, पर शहरों में दूध की समस्या वास्तव में अत्यन्त गम्भीर है। अधिकांश शहरों अथवा उनके आस-पास संगठित दुग्धशालायें अथवा डेयरियां नहीं है और वहां के निवासियों को दूध या तो शहर के अन्दर ही रहने वाले घोसियों से मिलता है अथवा आस-पास से आने वाले ग्वालों से। यह दूध सर्वथा अपवित्र होता है और उसमें मिलावट इतनी अधिक होती है कि यह कहना तक कठिन है कि दूध में पानी मिलाया गया है अथवा पानी में दूध मिला कर बांटा जा रहा है। दूध में मिलावट इस प्रकार बढ़ गई है कि भारत सरकार के कृषि-विक्रय परामर्शदाता (एग्रीकल्चरल मार्केटिंग एडवाइजर) ने अपनी १९५० ई० की रिपोर्ट में लिखा है, 'खाद्य पादार्थों, विशेषकर दूध में मिलावट का रोग विश्व के प्रायः सभी देशों में है, पर इस सम्बन्ध में जैसी दुरावस्था भारत में है, वैसी अन्यत्र कहीं नहीं। इस देश में मिलावट इस कदर फैली है कि लोग वस्तु की शुद्धता के प्रति उदासीन से होने लगे हैं।'

शासन के प्रयत्न

इस मिलावट रूपी रोग की दो ही चिकित्सा हो सकती हैं। एक तो निरोधक अर्थात् मिलावट करने वालों को पकड़ना और दंड देना। यह कार्य तो स्वास्थ्य अधिकारियों के अधीन है और वे इसे कर ही रहे हैं। हमारा अभीष्ट तो इस पर विचार करने का है कि शहरों में शुद्ध दूध पहुंचाने की क्या व्यवस्था शासन ने की है। बता चुके हैं कि हमारे राज्य के अधिकांश शहरों में अथवा उनके आस-पास सुसंगठित डेरियां नहीं हैं और यदि हैं भी, तो अति सामान्य तथा शहरों की आवश्यकता की पूर्ति के लिये सर्वथा अक्षम। शहरों में अधिकांशतः मोहल्ले का घोसी अथवा पड़ोस के गांवों का ग्वाला ही दूध बांटता है और उसके दूध में मिलावट होती है। जनप्रिय शासन ने पदग्रहण करते ही इस समस्या पर ध्यान दिया। उसके सामने दो ही उपाय थे, यथा नई डेरियां खोलना तथा उपलब्ध दूध को बिना मिलावट उपभोक्ता तक पहुंचाने की व्यवस्था करना। सरकार ने दोनों ही काम किये। उसने यथासम्भव नई डेरियां खोलीं, जिसका वर्णन ऊपर कर चुके हैं। उसने गैरसरकारी व्यक्तियों को भी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

डेरियां खोलने के लिये प्रोत्साहित किया और इसके लिये उन्हें पर्याप्त सहायता—प्राविधिक (टेकनिकल) और आर्थिक दी और बहुतेरों को ऋण भी दिये। परन्तु डेरियां (दुग्धशालायें) स्थापित करना खर्चीला काम है और राज्य की आर्थिक क्षमता सीमित है। अतएव उसने उपलब्ध दूध का सर्वोत्तम उपयोग करने की एक अत्युत्कृष्ट योजना बनाई, जिसने दूध में मिलावट करने वालों पर वह प्रहार किया जो सम्भवतः न्यायदण्ड भी न कर सका। वह था सहकारिता दुग्ध-संघों की स्थापना।

सहकारिता दुग्ध-संघ

सहकारिता दुग्ध-संघों का गठन एक ऐसा उपाय है, जिससे कम से कम खर्चे में अधिक से अधिक शुद्ध दूध उपलब्ध किया जा सकता है। इन संघों के अन्तर्गत दुग्धशालायें होती हैं, पर पशु नहीं होते और वे दुग्धशालायें दूध का उत्पादन नहीं करतीं, बल्कि वितरण मात्र करती हैं। दूध का उत्पादन तो आस-पास के ग्रामीण तथा ग्वाले ही करते हैं, पर इस योजना के अन्तर्गत उपभोक्ता को शुद्ध दूध मिलता है, क्योंकि शहरों में दूध वितरण करने वालों का काम इन दुग्ध-संघों ने ले लिया है, अन्तर केवल इतना है कि ग्वाले दूध में घनी मिलावट करते थे और दुग्ध-संघ वैसा नहीं करते।

इन संघों की कार्यविधि अत्यन्त सरल है। वे शहर के आस-पास के देहातों में जाकर उन ग्रामीणों से सम्पर्क स्थापित करते हैं, जिनके पास पशु हैं और जो अपने पशुओं का दूध बेचना चाहते हैं। संघ के अधिकारी उन व्यक्तियों को अपने पशुओं की देख-रेख करने, उन्हें अच्छा चारा खिलाने तथा उनके पशुओं की नस्ल सुधारने आदि के सम्बन्ध में समुचित सलाह और सहायता देते रहते हैं। दो-दो चार-चार गावों के बीच एक-एक दोहन केन्द्र होता है, जहां ये ग्रामीण नित्य अपने पशु ले आते हैं। दोहन केन्द्र साफ-सुथरे और पक्के बने होते हैं, जहां पशुओं को नहला कर उनके थनों को तथा आवश्यक होने पर सम्पूर्ण पृष्ठ भाग को दवाइयों के पानी से धोकर शुद्ध कर लिया जाता है। तब संघ की ही साफ बालटियों में उनका दूध निकाला जाता है और यह दूध संघ के डिब्बों में बन्द करके मोटर द्वारा शहरों में स्थित संघ की दुग्धशाला में भेज दिया जाता है, जहां आधुनिक वैज्ञानिक ढंग से उसका 'पास्चराइजेशन' (शीतोष्णीकरण) किया जाता है। इससे दूध अधिक काल तक ठहरता है और उसके तत्व नष्ट नहीं होते। यह दूध सील बन्द बोतलों अथवा डिब्बों में बन्द करके संघ के वितरकों के द्वारा शहर के उपभोक्ताओं में वितरित किया जाता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यह व्यवस्था अभी तक केवल कुछ बड़े नगरों तक ही सीमित हैं और वहां भी इन दुग्ध-संघों का पूरा विकास नहीं हो पाया है। फिर भी शहरों की जन-संख्या का एक बड़ा अंश इस व्यवस्था से लाभ उठा रहा है। दुग्ध संघों-की स्थापना शहर वालों के लिये एक स्वर्गीय वरदान सा है, क्योंकि इस प्रकार उन्हें उत्कृष्ट दूध मिलने लगा है और दूध में मिलावट की बात बहुत कम हो गई है। यह शिकायत सर्वथा मिट सकती है, यदि लोग दुग्ध-संघों के प्रति अधिक ध्यान दें। हर काम शासन और सरकार पर ही छोड़ देना उचित नहीं है। विदेशी शासन ने हमें वस्तुतः असमर्थ और सरकार-निर्भर बना दिया है, पर अपनी उस भावना को त्याग कर यदि हम सोत्साह उठें और दुग्ध-संघों के विकास में योग दें तो शहरों की दूध की समस्या पूर्णतया हल हो जाय। प्रत्येक शहर तथा कस्बे में इस प्रकार के दुग्ध-संघ स्थापित हो सकते हैं और शासन भी उनको समुचित सहयोग तथा सहायता देने को तत्पर है। ग्रामीणों के लिये भी यह अत्यन्त लाभप्रद योजना है। इसके अन्तर्गत उन्हें अपने पशुओं की देख-रेख में मुफ्त सहायता मिलती है तथा साथ ही अपने दूध के दाम भी उन्हें अपने घर बैठे मिल जाते हैं। यदि शहरी तथा ग्रामीण मिल कर इस उपयोगी योजना के विकास में सक्रिय रुचि ग्रहण करें, तो शहरों में शुद्ध दूध की दुर्लभता बहुत अधिक सीमा तक कम हो सकती है और साथ ही ग्रामीणों को अनायास अर्थलाभ भी हो सकता है।

घी-तेल

घी हमारा प्रधान पुष्टि-खाद्य है। घी का प्रचलन पंजाब, उत्तर प्रदेश तथा उत्तर भारत के अन्य क्षेत्रों में जितना है, उतना दक्षिण में नहीं। यही कारण है कि पंजाब, उत्तर प्रदेश, विहार, मध्य भारत आदि मिल कर देश का आधा घी तैयार करते हैं। हमारा सम्पूर्ण घी-उत्पादन लगभग १ करोड़ १५ लाख मन का है। विभाजन से पूर्व यह मात्रा इससे दूनी थी, पर विभाजन ने हमारे प्रमुख घी-उत्पादक प्रदेशों को हमसे अलग कर दिया। वर्तमान भारत में औसतन प्रति वर्ग मील पर ९ मन, प्रति ग्राम पीछे साढ़े २१ मन तथा १०० व्यक्ति पीछे साढ़े ३ मन घी का वार्षिक उत्पादन है। लगभग ६६,०००मन घी नैपाल से आता है, पर ठीक इतना ही घी हम बर्मा, मलय, सिंगापुर तथा अफ्रीका को निर्यात कर देते हैं। इस प्रकार हमारे अपने उपभोग के लिये केवल उतना ही बचता है, जितना हम स्वयं बनाते हैं। उसमें से भी लगभग ३० प्रतिशत हमारे उत्पादक अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये रख लेते हैं और सम्पूर्ण उत्पादन का केवल दो-तिहाई घी ही बाजार में विकने आता है। इस प्रकार देखा जाय, तो हमारे देश का घी-उत्पादन इतना ही होता है कि यदि सम्पूर्ण जन-संख्या घी खाय, तो प्रति व्यक्ति दो छटांक घी प्रति मास से अधिक नहीं मिल सकता है। स्पष्ट है कि हमारी अधिकांश जन-संख्या

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

घी के उपयोग से वंचित हैं। घी का उत्पादन बढ़ाने का एकमात्र उपाय यही है कि दूध का उत्पादन बढ़ाया जाय और इस सम्बन्ध में हम पिछले प्रकरणों में यथेष्ट चर्चा कर चुके हैं। दूसरा उपाय यह है कि उपलब्ध दूध में से ही अधिकाधिक घी निकाला जाय। इसके लिये सरकारी प्रयत्नों से उसके विभाग ने एक ऐसी मथानी का आविष्कार किया है, जो दही को भली-भांति विलो कर उससे अधिकतम मात्रा में मक्खन निकाल लेती है। वर्तमान मथानियों से जितना मक्खन निकलता है उससे यह मथानी सवाया मक्खन निकाल देती है। इस प्रकार सुधरी मथानी का उपयोग करके ही हम अपना घी का उत्पादन सवाया तो कर ही सकते हैं।

घी में मिलावट

घी में मिलावट की समस्या अति गम्भीर है। युद्धकाल से पूर्व यह समस्या इतनी गम्भीर न थी। उस समय शुद्ध घी मिलना कठिन न था। परन्तु अब मुंह मांगे दाम देने पर भी शुद्ध घी मयस्सर नहीं होता। इसका प्रधान कारण यह है कि युद्ध-काल में वस्तुओं की कीमत बढ़ने के साथ-साथ जब घी का मूल्य भी बढ़ा, तो तत्कालीन ब्रिटिश शासन ने इस देश में वनस्पति के उद्योग को खूब प्रोत्साहन दिया। वनस्पति के नये-नये कारखाने खुले और देश वनस्पति के टीनों से पट गया। वनस्पति का उपयोग मनुष्य के स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है अथवा नहीं यह एक अत्यन्त विवादास्पद विषय है और उसके पक्ष तथा विपक्ष में विद्वानों और विशेषज्ञों ने अनेक तर्क दिये हैं। परन्तु सर्वथा सत्य बात तो यह है कि देश का अधिकांश जनमत वनस्पति को हानिकर समझता है और यदि वह उसका उपयोग कर रहा है, तो केवल लाचारी के कारण। वनस्पति हानिकर न भी हो, तो भी उसका एक बड़ा अवगुण यही है कि लोभी दूकानदार उसका उपयोग शुद्ध घी में मिलाने के लिये करते हैं और घी दूषित हो जाता है।

मिलावट रोकने के प्रयत्न

घी में मिलावट रोकने के अनेक प्रयत्न किये गये हैं। एक तो भारत सरकार का है, जिसके अन्तर्गत उसने घी की विशुद्धता की गारन्टी करने वाली 'एगमार्क' मोहर की व्यवस्था की है। यह मोहर उस घी पर लगती है, जो सरकार के एग्रीकल्चरल मार्केटिंग विभाग की देख-रेख में तैयार किया जाता है और उसके अधिकारी समुचित जांच के बाद घी पर यह मोहर लगाते हैं, पर इस मोहर के अन्तर्गत उत्पादित घी की मात्रा सम्पूर्ण घी-उत्पादन के ढाई प्रतिशत से अधिक नहीं है और उतने से तो लोगों की आवश्यकता पूरी नहीं होती।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दूसरा प्रयत्न वनस्पति का निर्माण रोक देने के आन्दोलन के रूप में है। यह आन्दोलन प्रबल वेग से चल रहा है। भारत सरकार ने नियम बना दिया कि बनस्पति में तिल के तेल की एक मात्रा अवश्य मिला दी जाय, ताकि उसकी पृथक् पहिचान हो सके। पर उससे समस्या का समाधान नहीं हो पा रहा है। इसी सम्बन्ध में दूसरा प्रयत्न बनस्पति को रंग देने का है, ताकि घी में मिलाने के समय घी में भी उसका रंग आ जाय और ग्राहक सतर्क हो जाय। इसके लिये ऐसा रंग चाहिये जो उबालने पर उड़ न सके और साथ ही खाने वाले के स्वास्थ्य को प्रतिकूल रूप में प्रभावित न करे। उत्तर प्रदेश सरकार ने इस सम्बन्ध में देश के अन्य राज्यों की अपेक्षा अधिक सक्रियता दिखाई है। उसके स्वास्थ्य मंत्री ने राज्य की विधान सभा में घोषणा की थी कि यदि कोई वैज्ञानिक इस प्रकार के रंग का आविष्कार करे तो सरकार उसे १० हजार रुपये का पुरस्कार देगी। इस सम्बन्ध में सरकार के पास कुछ सुझाव आये, पर उनमें से कोई भी ग्राह्य न निकला, क्योंकि जो रंग असाधारण ताप पर भी ठहरते थे, वे स्वास्थ्य के लिये हानिकारक थे और जो स्वास्थ्य के लिये हानिकारक नहीं थे, वे ताप नहीं सहन कर सकते थे।

तेल

तेल के सम्बन्ध में उत्तर प्रदेश आत्मसम्पन्न ही नहीं, उससे कुछ अधिक है और बहुत बड़ी मात्रा में तेल का और तिलहन का भी निर्यात करता है। तेल पेरने का उद्योग इस राज्य के प्रमुख उद्योगों में से है, किन्तु कुछ काल से तेल में भटकटैया के बीजों के मिश्रण के कारण अशुद्धता आ गई थी जो उपभोक्ता के शरीर में रोग उत्पन्न करती थी। तेल-मिल वाले कहते थे की आढ़ती अशुद्ध बीज देते हैं, आढ़ती यह दोष तिलहन उत्पादकों पर मढ़ते थे। कुछ भी हो यह प्रवृत्ति अत्यन्त घृणित है और इसने हमारे राज्य के तेल उद्योग को अत्यधिक हानि पहुंचाई है और उसे बाहर के राज्यों में बदनाम कर दिया है। शासन ने तेल की शुद्धता के लिये विशुद्ध खाद्य वस्तु विधान के अन्तर्गत कड़ी कार्रवाई की और मिलावट करने वालों को न्यायालय से दण्डित कराया।

शासन ने भटकटैया के बीजों का अस्तित्व मिटा देने का एक व्यापक आन्दोलन भी चलाया। भटकटैया एक जंगली पौदा है, जो प्राकृतिक रूप से उत्पन्न होता है। उसके फूलों से जो बीज झरते हैं वे सरसों के बीज से मिलते-जुलते होते हैं और सरसों के बीज में उन्हें मिला दिये जाने पर केवल अभ्यस्त आंखें ही उन्हें पहचान सकती हैं। भटकटैया के बीजों अथवा पौदों के विनाश का आन्दोलन केवल अस्थायी आन्दोलन हो सकता है, उसका प्रकट उद्देश्य कि भटकटैया का पौदा ही नष्ट हो जाय, कभी पूरा नहीं हो सकता, क्योंकि प्रकृति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के विरुद्ध इस प्रकार का युद्ध कभी सफल नहीं हो सकता। परन्तु उसका जो अप्रत्यक्ष उद्देश्य है अर्थात् भटकटैया के बीजों को सरसों के बीजों में मिलाने के विरुद्ध एक प्रकार का मनोवैज्ञानिक वातावरण प्रस्तुत करना, उसकी सफलता में कोई संदेह नहीं है।

साथ ही घी, तेल आदि में मिलावट करने वालों के लिये कठोर दण्ड की व्यवस्था भी अत्यावश्यक है। शुद्ध खाद्य-सम्बन्धी अधिनियम में जिस दण्ड की व्यवस्था है, वह पर्याप्त नहीं है। इस विधान के अन्तर्गत मिलावट करने वालों पर बहुधा अर्थ दण्ड होता है और वे जुर्माने की रकम भर कर पुनः वही कर्म करके अपनी क्षतिपूर्ति कर लेते हैं। ऐसे समाज-द्रोहियों के साथ पूर्ण निष्ठुरता का व्यवहार होना चाहिये और यह सन्तोष की बात है कि शासन ने अपराध निरोधक अधिनियम का उपयोग इन नफाखोर समाज-द्रोहियों के विरुद्ध व्यापक रूप से प्रारम्भ किया है।

मांस, मछली और अण्डा

उत्तर प्रदेश की अधिकांश जनता निरामिष-भोजी है, किन्तु मांसहारियों की संख्या भी कम नहीं है। पहिले ही प्रकट कर चुके हैं कि उत्तर प्रदेश में पशुओं की संख्या अत्यधिक है, न केवल पालतू-पशु बल्कि जंगली जानवर भी काफी संख्या में हैं। मांस शुद्ध और ताजा बिके इसके लिये म्यूनिसिपैल्टियों द्वारा समुचित व्यवस्था है और कसाईखानों आदि में मांस की शुद्धता आदि की जांच का पर्याप्त प्रबन्ध है।

मछली भी मांसहारियों का एक प्रिय खाद्य है और इस राज्य में मछली उत्पादन के लिये बड़ा स्थान है। यहां की नदियों और तालाबों तथा झीलों में भांति-भांति की मछलियां पाई जाती हैं। मछली पालने और उसके व्यापार को प्रोत्साहित करने के लिये कांग्रेस शासन ने एक मत्स्य-पालन विभाग भी स्थापित कर रखा है, जो मछलियों की उपयोगी जातियों के उपजाने तथा उनके पालन-पोषण आदि के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। शासन ने मत्स्योत्पादन बढ़ाने के निमित्त एक और सुविधाजनक योजना बनाई है, जिसके अन्तर्गत पूर्वी जिलों में मछुओं की सहकारिता-समितियों का विकास कर उन्हें अपनी मछलियों का पूरा लाभ लेने का मौका मिलेगा। अभी विचवानी तथा अन्य अनेक मध्यवर्ती वर्ग उनसे सस्ती दर पर मछलियां लेकर उन्हें राज्य के ही शहरों तथा कलकत्ता आदि को ऊंची दरों पर भेजा करते थे और अधिकांश लाभ बीच में ही हड़प लेते थे, परन्तु इस योजना के अन्तर्गत मछुओं को पर्याप्त लाभ होगा और इस प्रकार अधिकतम मत्स्योत्पादन के लिये उन्हें प्रोत्साहन मिलेगा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्डा भी एक लोकप्रिय खाद्य है और बहुतेरे शाकाहारी भी अन्डा खाते हैं। अन्डा अत्यन्त पुष्टिकारक होता है और दूध के बाद पुष्टई में उसी का क्रम है। अन्डे का उत्पादन कुक्कुट (मुर्गी) से होता है। कुक्कुट-पालन इस राज्य में कुटीर-उद्योग के रूप में व्यापक रीति से होता है। विदेशों में तो इसके लिये बड़े-बड़े पाउल्ट्री-फार्म हैं, पर हमारे यहां ऐसे फार्मों की संख्या अत्यल्प है और हैं भी तो अधिकांशतः सरकारी। अधिकांश में निम्न वर्ग के ही लोग थोड़ी सी मुर्गियां पाल कर उनके अन्डे बेच लेते हैं। परन्तु सरकार ने अन्डा व्यवसाय को प्रोत्साहित करने के लिये एक पृथक शाखा स्थापित की है और इसके अन्तर्गत लोगों को मुर्गियों के पालन-पोषण तथा उनके रोगों की चिकित्सा आदि के सम्बन्ध में सलाह और सहायता मिलती है। कुछ सरकारी कुक्कुट-शालाओं में मुर्ग और मुर्गियों की अच्छी नस्ल के जोड़े भी तैयार करके बेचे जाते हैं।

उपसंहार

इस प्रकार हमने देख लिया कि हमारे राज्य को अन्न की कितनी आवश्यकता है तथा अन्य खाद्य वस्तुओं की भी हमें कितनी जरूरत है तथा उनके विकास के निमित्त क्या किया जा रहा है और शासन का उसमें कितना व्यापक योग है। हमारे आहार के पदार्थों में अन्न को छोड़ कर शेष सभी वस्तुएं अनियन्त्रित हैं। केवल शक्कर पर ही आंशिक नियंत्रण है। यह भी स्पष्ट है कि अन्न को छोड़ कर शेष पदार्थ, जैसे दाल, शक्कर, तेल आदि में हम आत्मसम्पन्न ही नहीं उससे कुछ अधिक हैं और कुछ लोग प्रश्न कर सकते हैं कि जब हम इन वस्तुओं के सम्बन्ध में अभावग्रस्त नहीं हैं, तो उनका दाम क्यों चढ़ा हुआ है और वे हमें सरलता से क्यों नहीं उपलब्ध हैं?

इसका कारण यही है कि प्रायः सभी वस्तुयें अखिल भारतीय रूप में एक आर्थिक व्यवस्था के अधीन हैं। हम केवल अपने राज्य के ही संकीर्ण दायरे से खाद्य समस्या को नहीं सुलझा सकते। हमें अपनी बहुल्यता की वस्तुओं को मिल बांट कर खाना पड़ता है। जिस प्रकार हम अन्य राज्यों से गेहूं और चावल की अपेक्षा करते ह, उसी प्रकार वे भी हमसे हमारी बहुल्यता की वस्तुयें यथा तेल, शक्कर, गुड़, दाल आदि की आशा रखते हैं। यदि हम अपनी वस्तुयें रोक कर उन्हें केवल अपने ही उपयोग में लाने का विचार करें, तो निश्चयतः ही हमारे लिये वे सुलभ हो जायेंगी, पर उसी प्रकार यदि बम्बई वाले अपना कपड़ा रोक लें अथवा बंगाल जूट और लोहा देना बन्द कर दें, तो हमारी क्या स्थिति होगी? अतएव खाद्य के प्रश्न को हमें पूरे देश की आवश्यकता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

को सामने रख कर ही हल करना होगा और जो कुछ भी उपलब्ध होगा, उसका केन्द्रीय संचय कर उसमें से सभी को बराबर-बराबर उपभोग करना होगा।

पिछले पृष्ठों में हमने जिन सरकारी तथा गैरसरकारी प्रयत्नों का उल्लेख किया है, उनके फलस्वरूप हमारी अन्न-स्थिति के सुधर जाने में तो कोई संदेह नहीं है, पर उसका यह अर्थ भी नहीं कि आगामी मार्च के बाद हमारा राशन बढ़ जायगा अथवा अन्न का नियन्त्रण हट जायगा। ईश्वर करे वह दिन शीघ्र आये, किन्तु इस सम्बन्ध में अधिक आशावादी नहीं होना चाहिये, क्योंकि हम स्वयं आत्मनिर्भर होते हुए भी प्रस्तुत राशन दर से अधिक अन्न का उपभोग करने का विचार तब तक नहीं कर सकते, जब तक अन्य अभाव-ग्रस्त प्रदेश भी आत्मनिर्भर नहीं हो जाते। जैसा कि पहिले कह चुके हैं, हम अपना प्रयास केवल मात्र अपने ही लिये नहीं सम्पूर्ण राष्ट्र के लिये कर रहे हैं। हम अन्नोत्पादन बढ़ा सकते हैं, कोई जूट अधिक पैदा कर सकता है, कहीं लोहा अधिक होता है कोई कपड़ा अधिक बनाता है, पर जहां जो भी प्रयास होता है वह सम्पूर्ण राष्ट्र के लिये ही होता है और सम्पूर्ण राष्ट्र को समान रूप से उसका उपभोग करने का अधिकार है। यह स्थिति कब तक रहेगी, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, परन्तु यह सर्वथा सत्य है कि यदि सभी राज्यों ने उत्पादन सम्बन्धी अपने प्रयासों को सोत्साहन जारी रखा तो वह दिन दूर नहीं जब हमें विदेशों का मुंह ताकने की आवश्यकता न पड़ेगी और हम अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति आप कर सकेंगे।

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
वाराणसी।
आगत क्रमांक....... 2142
दिनांक....... 5/9/81

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri



CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

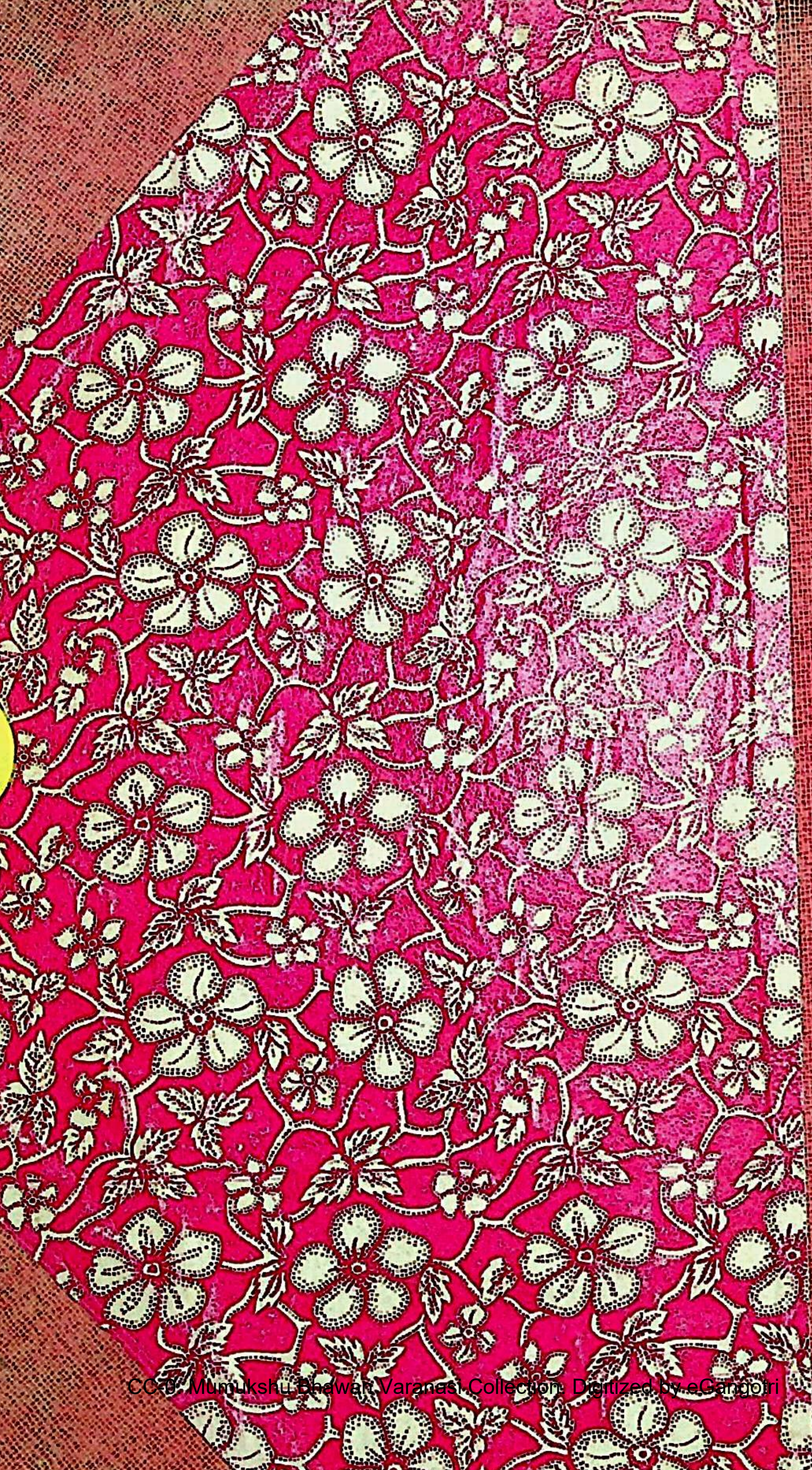


CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग विद्यालय
ग्रन्थालय
आगत क्रमांक............
दिनांक............

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri



CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri